गागर में सागर



ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के
सत्संग-प्रवचनों से संकलित

ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के
पावन वचनामृत

गागर में सागर

निवदेन

ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के सत्संग प्रवचनों का यह संकलन 'गागर में सागर' आपके करकमलों में अर्पित करते हुए श्री योग वेदान्त सेवा समिति कृतार्थ हो रही है।

वेदों को सागर की उपमा दी गयी है। वे ज्ञान के सिधु तो हैं किंतु जन सामान्य के उपयोग में नहीं आते। उस अथाह ज्ञानराशि को अपने स्वाध्याय-तप एवं आत्मानुभव की ऊष्मा से बादलों का रूप लेकर फिर भक्तवत्सलता के शीतल पवन के बहने पर अमृतवाणी की धाराओं से बरसाते हैं ब्रह्मनिष्ठ लोकसंत। ऐसे संतों की वाणी में साधना की सुगम रीति मिलती है, आत्मज्ञान की समझ मिलती है। सच्चे सुख की कुंजी मिलती है, शरीर-स्वास्थ्य के नुस्खे मिलते है और उन्नत जीवन जीने की सर्वांगसम्पूर्ण कला ही मिल जाती है। सागररूपी शास्त्रों का सार मनुष्य की छोटी समझरूपी बुद्धि की गागर में उतारने की क्षमता इस छोटी सी सत्संग पुस्तिका में है। आप सभी इसका लाभ लें एवं औरों को भी दिलायें।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
अमदावाद आश्रम।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कुसंग से बचो, सत्संग करो

दो नाविक थे। वे नाव द्वारा नदी की सैर करके सायंकाल तट पर पहुँचे और एक-दूसरे से कुशलता का समाचार एवं अनुभव पूछने लगे। पहले नाविक ने कहाः "भाई ! मैं तो ऐसा चतुर हूँ

कि जब नाव भँवर के पास जाती है, तब चतुराई से उसे तत्काल बाहर निकाल लेता हूँ।" तब दूसरा नाविक बोलाः "मैं ऐसा कुशल नाविक हूँ कि नाव को भँवर के पास जाने ही नहीं देता।"

अब दोनों में से श्रेष्ठ नाविक कौन है ? स्पष्टतः दूसरा नाविक ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह भँवर के पास जाता ही नहीं। पहला नाविक तो किसी न किसी दिन भँवर का शिकार हो ही जायगा।

इसी प्रकार सत्य के मार्ग अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाले पथिकों के लिए विषय विकार एवं कुसंगरूपी भँवरों के पास न जाना ही श्रेयस्कर है।

अगर आग के नजदीक बैठोगे जाकर, उठोगे एक दिन कपड़े जलाकर।
माना कि दामन बचाते रहे तुम, मगर सेंक हरदम लाते रहे तुम।।

कोई जुआ नहीं खेलता, किंतु देखता है तो देखते-देखते वह जुआ खेलना भी सीख जायगा और एक समय ऐसा आयगा कि वह जुआ खेले बिना रह नहीं पायेगा।

इसी प्रकार अन्य विषयों के संदर्भ में भी समझना चाहिए और विषय विकारों एवं कुसंग से दूर ही रहना चाहिए। जो विषय एवं कुसंग से दूर रहते हैं, वे बड़े भाग्यवान हैं।

जिस प्रकार धुआँ सफेद मकान को काला कर देता है, उसी प्रकार विषय-विकार एवं कुसंग नेक व्यक्ति का भी पतन कर देते है।

'सत्संग तारे, कुसंग डुबोवे।'

जैसे हरी लता पर बैठने वाला कीड़ा लता की भाँति हरे रंग का हो जाता है, उसी प्रकार विषय-विकार एवं कुसंग से मन मलिन हो जाता है। इसलिए विषय-विकारों और कुसंग से बचने के लिए संतों का संग अधिकाधिक करना चाहिए। कबीर जी ने कहाः

संगत कीजै साधु की, होवे दिन-दिन हेत।
साकुट काली कामली, धोते होय न सेत।।
कबीर संगत साध की, दिन-दिन दूना हेत।
साकत कारे कानेबरे, धोए होय न सेत।।

अर्थात् संत-महापुरूषों की ही संगति करनी चाहिए क्योंकि वे अंत में निहाल कर देते हैं। दुष्टों की संगति नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनके संपर्क में जाते ही मनुष्य का पतन हो जाता है।

संतों की संगति से सदैव हित होता है, जबकि दुष्ट लोगों की संगति गुणवान मनुष्यों का भी पतन हो जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सर्वदा आनन्द में, शांतमना होकर रहो

सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्व शरीर के धर्म हैं। जब तक शरीर है, तब तक ये आते जाते रहेंगे, कभी कम तो कभी अधिक होते रहेंगे। उनके आने पर तुम व्याकुल मत होना। तुम पूर्ण आत्मा हो, अविनाशी हो और सुख-दुःख आने जाने वाले हैं। वे भला तुम्हें कैसे चलायमान कर सकते हैं ? उनका तो अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः, वे तो तुम्हारे अस्तित्व का आधार लेकर प्रतीत होते हैं। तुम उनसे भिन्न हो और उन्हें प्रकाशित करने वाले हो। अतः उन्हें देखते रहो, सहन करो और गुजरने दो। सर्वदा आनंद में रहो एवं शांतमना होकर रहो, सहन करो और गुजरने दो। सुख-दुःख देने वाले कोई पदार्थ नहीं होते हैं वरन् तुम्हारे मन के भाव ही सुख-दुःख पैदा करते हैं। इस विचार को सत् वस्तु में लगाकर अपने-आपमें मग्न रहो और सदैव प्रसन्नचित्त रहो। उद्यम न त्यागो। प्रारब्ध पर भरोसा करना कमजोरी का लक्षण है।

अतः अपनी और दूसरों की भलाई के लिए सत्कर्म करते रहो। फल की इच्छा से ऊपर उठ जाओ क्योंकि इच्छा बंधन में डालती है।

सदैव भलाई के कार्य करते रहो एवं दूसरों को भी अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करो। ऐसा कोई भी काम न करो, जिसे करने से तुम्हारा मन मलिन हो। यदि नेक कार्य करते रहोगे तो भगवान तुम्हें सदैव अपनी अनन्त शक्ति प्रदान करते रहेंगे। हमारे शास्त्रों में कहा गया हैः

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

माता, पिता एवं गुरू को ईश्वर के समान पूजनीय समझो। उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन अवश्य करो, जो कर्त्तव्यपालन ठीक से करता है वही श्रेष्ठ है। माता, पिता एवं सच्चे सदगुरू की सेवा बड़े-में-बड़ा धर्म है। गरीबों की यथासम्भव सहायता करो। रास्ते से भटके हुए लोगों को सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा दो परंतु यह सब करने के साथ उस ईश्वर को भी सदैव याद करते रहो जो हम सभी का सर्जनहार, पालनहार एवं तारणहार है। उसके स्मरण से ही सच्ची शांति, समृद्धि तथा सच्चा सुख प्राप्त होगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मुक्ति का साधनः मन

मन पर पूर्ण संयम रखना चाहिए। बुरे संकल्पों सदा दूर रहना चाहिए। किसी भी बुरे विचार का बार-बार चिंतन नहीं करना चाहिए, अपितु उसकी स्मृति ही पूर्णतः मिटा देनी चाहिए। मन की दौड़ बाहर नहीं हो तो समझ लो कि आपके अभ्यास का मन पर प्रभाव पड़ रहा है। समुद्र के बीचोबीच चल रहे जहाज पर कोई पक्षी बैठा हो तो वह कहाँ जायेगा ? उड़ते-उड़ते इधर-

उधर घूमता हुआ थककर वापस जहाज पर ही आकर बैठेगा। इसी प्रकार मन भी भले दौड़े, थककर स्वयं आत्मिक शांति में स्थिर होगा।

मन को अपना गुलाम बनाकर उससे मोक्ष का काम लेना चाहिए। मन को कामना, विषय, इच्छा और तृष्णा आदि से खाली करके उसमें ईश्वरीय प्रेम भरना चाहिए। सदैव चौकस होकर मन पर निगरानी रखनी चाहिए तथा आत्मसुख को पाकर उसी में मस्त रहना चाहिए। मन कोई वस्तु नहीं है। मन तुम्हारी ही शक्ति से कार्य करता है। तुम मन से भिन्न ज्योतिस्वरूप आत्मा हो। ये सूरज, चाँद, तारे - सभी तुम्हारे प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहे हैं। वे आभासमात्र अल्प हैं। सूर्य दिन में है तो रात में नहीं और चंद्रमा रात को है तो दिन में नहीं, परंतु तुम वह ज्योति हो जो तीनों कालों में प्रकाशित हो रही है। वही तुम्हारा असली स्वरूप है।

जिस प्रकार वस्त्र शरीर से भिन्न हैं, वैसे ही आत्मा शरीर से भिन्न हैं, आकाश की तरह सबमें व्यापक हैं। शरीर को जो इन्द्रियाँ मिली हुई हैं, उनके द्वारा शुभ कर्म करने चाहिए। सदैव शुभ देखना, सुनना एवं बोलना चाहिए।

जिसने शुभ कर्मों से मन को जीता है, समझो उसने जग को जीत लिया। यदि मन को वश में नहीं किया तो पाँच विषयों में ही फँसकर सम्पूर्ण जीवन निकल जायगा। फिर वह चौरासी लाख योनियों में भटकायेगा। अखण्ड सुख और शाश्वत सुख प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब मन को विषयों से छुड़ायेंगे तभी आत्मा का सुख मिलेगा।

जो मनुष्य निष्काम कर्म करता है उसे आत्मा में प्रीति होती है, उसे संसार से वैराग्य उपजता है और वैराग्य की अग्नि से उसके सारे पाप तथा कुसंस्कार जल जाते हैं। इस प्रकार जब हृदय शुद्ध भगवद् शांति, ईश्वरीय आनंद का स्रोत अपने भीतर ही फूट पड़ता है। जैसे बारूद का ढेर बना दिया जाय तो एक दियासिलाई से ही विस्फोट हो जाता है, ऐसे ही जब साधक वैराग्यवान होकर मन को वश में करता है तब उसे सदगुरू का थोड़ा सा उपदेश भी परमात्म पद में प्रतिष्ठित कर देता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जगत से प्रीति हटाकर आत्मा में लगायें

जैसी प्रीति संसार के पदार्थों में है, वैसी अगर आत्मज्ञान, आत्मध्यान, आत्मानंद में करें तो बेड़ा पार हो जाय। जगत के पदार्थों एवं वासना, काम, क्रोध आदि से प्रीति हटाकर आत्मा में लगायें तो तत्काल मोक्ष हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है।

काहे एक बिना चित्त लाइये ?

ऊठत बैठत सोवत जागत, सदा सदा हरि ध्याइये।

हे भाई ! एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी से क्यों चित्त लगाता है ? उठते-बैठते, सोते-जागते तुझे सदैव उसी का ध्यान करना चाहिए।

यह शरीर सुन्दर नहीं है। यदि ऐसा होता तो प्राण निकल जाने के बाद भी यह सुन्दर लगता। हाड़-मांस, मल-मूत्र से भरे इस शरीर को अंत में वहाँ छोड़कर आयेंगे जहाँ कौए बीट छोड़ते हैं।

मन के समक्ष बार-बार उपर्युक्त विचार रखने चाहिए। शरीर को असत्, मल-मूत्र का भण्डार तथा दुःखरूप जानकर देहाभिमान का त्याग करके सदैव आत्मनिश्चय करना चाहिए। यह शरीर एक मकान से सदृश है, जो कुछ समय के लिए मिला है। जिसमें ममता रखकर आप उसे अपना मकान समझ बैठे हैं, वह आपका नहीं है। शरीर तो पंचतत्वों का बना हुआ है। आप तो स्वयं को शरीर मान बैठे हो, परंतु जब सत्य का पता लगेगा तब कहोगे कि 'हाय ! मैं कितनी बड़ी भूल कर बैठा था कि शरीर को 'मैं' मानने लगा था।' जब आप ज्ञान में जागोगे तब समझ में आयेगा कि मैं पंचतत्वों का बना यह घर नही हूँ, मैं तो इससे भिन्न सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हूँ। यह ज्ञान ही जिज्ञासु के लिए उत्तम खुराक है।

संसार में कोई भी किसी का वैरी नहीं है। मन ही मनुष्य का वैरी और मित्र है। मन को जीतोगे तो वह तुम्हारा मित्र बनेगा। मन वश में हुआ तो इन्द्रियाँ भी वश में होंगी।

श्रीगौड़पादाचार्यजी ने कहा हैः 'समस्त योगी पुरूषों के भवबंधन का नाश, मन की वासनाओं का नाश करने से ही होता है। इस प्रकार दुःख की निवृत्ति तथा ज्ञान और अक्षय शांति की प्राप्ति भी मन को वश करने में ही है।'

मन को वश करने के कई उपाय हैं। जैसे, भगवन्नाम का जप, सत्पुरूषों का सत्संग, प्राणायाम आदि।

इनमें अच्छा उपाय है भगवन्नाम जपना। भगवान को अपने हृदय में विराजमान किया जाय तथा गर्भ का दुःख, जन्म का दुःख, बीमारियों का दुःख, मृत्यु का दुःख एवं चौरासी लाख योनियों का दुःख, मन को याद दिलाया जाय। मन से ऐसा भी कहा जाय कि 'आत्मा के कारण तू अजर, अमर है।' ऐसे दैनिक अभ्यास से मन अपनी बदमाशियाँ छोड़कर तुम्हारा हितैषी बनेगा। जब मन भगवन्नाम का उच्चारण 200 बार माला फेरकर करने के बजाय 100 माला फेरकर बीच में ही जप छोड़ दे तो समझो कि अब मन चंचल हुआ है और यदि 200 बार माला फेरे तो समझो कि अब मन स्थिर हुआ है।

जो सच्चा जिज्ञासु है, वह मोक्ष को अवश्य प्राप्त करता है। लगातार अभ्यास चिंतन तथा ध्यान करने से साधक आत्मनिश्चय में टिक जाता है। अतः लगातार अभ्यास, चिंतन, ध्यान करते रहना चाहिए, फिर निश्चय ही सब दुःखों से मुक्ति और परमानंद की प्राप्ति हो जायेगी। मोक्ष प्राप्त हो जायेगा।

अपनी शक्ल को देखने के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है - एक निर्मल दर्पण, दूसरी आँख और तीसरा प्रकाश। इसी प्रकार शम, दम, तितिक्षा, ध्यान तथा सदगुरू के अद्वैत ज्ञान के उपदेश द्वारा अपने आत्मस्वरूप का दर्शन हो जाता है।

शरीर को मैं कहकर बड़े-बड़े महाराजे भी भिखारियों की नाँई संसार से चले गये, परंतु जिसने अपने आत्मा के मैं को धारण कर लिया वह सारे ब्रह्माण्डों का सम्राट बन गया। उसने अक्षय राज्य, निष्कंटक राज्य पा लिया।

हम परमानंदस्वरूप परब्रह्म हैं। सबमें हमारा ही रूप है। जो आनंद संसार में भासता है, वह वास्तव में आत्मा के आनंद की ही एक झलकमात्र होती है। तुम्हारे भीतर का आनंद ही अज्ञान से बाहर के विषयों में प्रतीत होता है।

हम आनंदरूप पहले भी थे, अभी भी हैं और बाद में भी रहेंगे। यह जगत न पहले था, न बाद में रहेगा, किंतु बीच में जो दिखता है वह भी अज्ञानमात्र है। आरम्भ में केवल आनंदतत्व था, वैसे ही अभी भी ब्रह्म का ही अस्तित्व है।

जैसे सोना जब खान के अन्दर था तब भी सोना था, अब उसमें से आभूषण बने तो भी वह सोना ही है और जब आभूषण नष्ट हो जायेंगे तब भी वह सोना ही रहेगा, वैसे ही केवल आनंदस्वरूप परब्रह्म ही सत्य है।

चाहे शरीर रहे अथवा न रहे, जगत रहे अथवा न रहे, परंतु आत्मतत्त्व तो सदा एक-का-एक, ज्यों का त्यों है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नश्वर से सुखी होने की इच्छा छोड़ते ही परम सुखी

जिस प्रकार पानी में दिखने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब वास्तविक सूर्य नहीं है अपितु सूर्य का आभासमात्र है, उसी प्रकार विषय-भोगों में जो आनंद दिखता है वह आभास मात्र ही है, सच्चा आनंद नहीं है। वह ईश्वरीय आनंद का ही आभासमात्र है। एक परब्रह्म परमेश्वर ही सत्, चित् तथा आनंदस्वरूप है। वही एक तत्त्व किसी में सत् रूप में भास रहा है, किसी में चेतनरूप में तो किसी में आनंदरूप में। किंतु जिसका हृदय शुद्ध है उसे ईश्वर एक ही अभेदरूप में प्रतीत होता है। वह सत् भी स्वयं है, चेतन भी स्वयं है और आनंद भी स्वयं है।

स्वामी रामतीर्थ से एक व्यक्ति ने प्रार्थना कीः "स्वामी जी ! मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं दुनिया का राजा बन जाऊँ।"

स्वामी रामतीर्थः "दुनिया का राजा बनकर क्या करोगे ?"

"व्यक्तिः "मुझे आनंद मिलेगा, प्रसन्नता होगी।"

स्वामी रामतीर्थ बोलेः "समझो, तुम राजा हो गये परंतु राजा होने के बाद भी कई दुःख आयेंगे क्योंकि तुम ऐसे पदार्थों से सुखी होना चाहते हो जो नश्वर हैं। वे सदा किसी के पास नहीं रहते तो तुम्हारे पास कहाँ से रहेंगे ? इससे बढ़िया, यदि तुम नश्वर पदार्थों से सुखी होने की इच्छा ही छोड़ दो तो इसी क्षण परम सुखी हो जाओगे। तुम्हें अपने भीतर आनंद के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु मिलेगी ही नहीं। जिस आनंद की प्राप्ति के लिए तुम राज्य माँग रहे हो, उससे अधिक आनंद तो वस्तुओं अथवा परिस्थितियों की इच्छा निवृत्ति में है।"

हम भोगों को नहीं भोगते बल्कि भोग ही हमें भोग डालते हैं। क्षणिक सुख के लिए हम बल, बुद्धि, आयु और स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं। वह क्षणिक सुख भी भोग का फल नहीं होता बल्कि हमारे मन की स्थिरता तथा भोग को पाने की इच्छा के शांत होने का परिणाम होता है। वह आनंद हमारे आत्मा का होता है, भोग भोगने का नहीं।

इच्छा की निवृत्ति से मन शांत होता है और आनंद मिलता है। अतः इच्छाओं और वासनाओं का त्याग करो तो मन शांत होगा तथा अक्षय आनंद की प्राप्ति होगी। इच्छाओं को त्यागने में ही सच्ची शांति है।

संतोषी व्यक्ति ही सुखी रह सकता है। भले ही कोई व्यक्ति करोड़पति क्यों न हो किंतु यदि उसे संतोष नहीं हो तो वह कंगाल है। संतोषी व्यक्ति ही सबसे अधिक धनवान है। उसी को शांति प्राप्त होती है, जिसे प्राप्त वस्तु अथवा परिस्थिति में संतोष होता है।

इच्छा-वासनाओं का त्याग और प्राप्त वस्तुओं में संतुष्टि का अवलंबन मनुष्य को महान बना देता है। अतः वासनाओं का त्याग करके प्राप्त वस्तुओं में संतुष्ट रहो तथा अपने मन को परमात्मा में लगाओ तो आप सुख और आनंद को बाँटने वाले बन सकते हो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भोग को सदैव रोग समझो

भोगे रोग भयं। भोगों में रोगों का डर रहता ही है। भोग भोगने का परिणाम रोग ही होता है। भोग बुरी बला है। भोग भोगने के पश्चात् चित्त कदापि तृप्त नहीं होता, सदैव व्याकुल रहता है। भोगों का सुख अनित्य होता है। दिल चाहता है कि बार-बार भोग भोगूँ। अतः मन में शांति नहीं रहती। जैसे घी को अग्नि में डालते समय पहले तो अग्नि बुझने लगती है, परंतु बाद में भड़क उठती है, वैसे ही भोग भी हैं। भोगते समय थोड़ी प्रसन्नता एवं तृप्ति होती है, परंतु बाद में भोग-वासना भड़ककर मनुष्य को जलाती, मनुष्य को सदैव अपना गुलाम बनाकर रखना चाहती है। 'गुरूग्रन्थ साहिब' के राग आसा, वाणी श्री रविदास शब्द में आता हैः

म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर, एक दोख बिनास।

पंच दोख असाध जा महि, ता कि केतक आस।।

श्री रविदासजी फरमाते हैं कि 'हिरन केवल शब्दों पर रीझकर शिकारी के वश में हो जाता है, मछली खाने के लोभ में धीवर के जाल में फँसती है, भ्रमर फूल की सुगंध पर आसक्त होकर अपनी जान गँवा देता है, पतंग दीपक की ज्योति पर मस्त होकर अपने को जलाकर समाप्त कर देता है, हाथी काम के वश होकर गड्ढे में गिरता है। अर्थात् मनुष्येतर प्राणी एक-एक विषय के वश में होकर स्वयं को नष्ट कर देता है, जबकि मनुष्य तो पाँचों विषयों में फँसा हुआ है। अतः उसके बचने की कौन सी आशा होगी ? अवश्य ही वह नष्ट होगा।

भोग को सदैव रोग समझो। विषय-विकारों में डूबकर सुख-शांति की अभिलाषा कर रहे हो। शोक तुम्हारे ऐसे जीने पर !

स्मरण रखो कि तुम्हें धर्मराज के समक्ष आँखें नीची करनी पड़ेंगी। कबीर साहब ने फरमाया हैः

धर्मराय जब लेखा माँगे, क्या मुख ले के जायेगा ?
कहत कबीर सुनो रे साधो, साध संगत तर जायेगा।।

भूलो नहीं कि वहाँ कर्म का प्रत्येक अंश प्रकट होगा, प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी रहेगा। तुम्हें वहाँ अपना सिर नीचा करना पड़ेगा। अतः सोचो, अभी भी समय गया नहीं है। सामी साहब कहते हैं कि 'जो समय बीत गया सो बीत गया, शेष समय तो अच्छा आचरण करो। अपने अंतःकरण में अपने प्रियतम को देखो।' मनुष्य-देह वापस नहीं मिलेगी।

अतः आज अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लो कि मैं सत्पुरूषों के संग से, सत्शास्त्रों के अध्ययन से, विवेक एवं वैराग्य का आश्रय लेकर किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष की शरण में जाकर तथा अपने कर्त्तव्यों का पालन करके इस मनुष्य-योनि में ही मोक्ष प्राप्त करूँगा, इस अमूल्य मनुष्य जन्म को विषय भोगों में बरबाद नहीं करूँगा, इस मानव जीवन को सार्थक बनाऊँगा तथा आत्मज्ञान (मोक्ष) प्राप्त कर जन्म-मरण के चक्र से निकल जाऊँगा, जीवन को सफल बनाऊँगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पराधीन सपनेहूँ सुख नाहीं

इन्द्रियाँ मन को अपने-अपने विषय की ओर खींचती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का प्रवाह वायु के प्रवाह से भी कई गुना अधिक तेज होता है। इन विषयों के प्रवृत्तिरूपी प्रवाह से मन एक क्षण में एक ओर आकर्षित होता है तो दूसरे क्षण दूसरी ओर। इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में इस प्रकार खिंचा हुआ मन कभी एक जगह स्थिर नहीं रह सकता, सदैव चंचल बना रहता है। यह मन की

पराधीनता है। पराधीन होना ही सब दुःखों का कारण है। जो इन्द्रियों के वश में होकर विषयों के पीछे पड़ा हुआ है, वह पराधीन ही है। पराधीनता का अर्थ है दूसरे के वश में होना अथवा गुलाम होना।

तृष्णा जहाँ होवे वहाँ ही, जान ले संसार है।
होवे नहीं तृष्णा जहाँ, संसार का सो पार है।।
वैराग्य पक्का धार कर, मत भूल विषयासक्त हो।
तृष्णा न कर हो जा सुखी, मत भोग में आसक्त हो।।

जो व्यक्ति ज्ञानरहित होता है और जो अपने मन को योग के द्वारा शांत नहीं करता, उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रहतीं। उस व्यक्ति की दशा बलवान घोड़ोंवाले रथ पर बैठे नये-नये रथवान जैसी भयानक होती है, किंतु जिसने अपने मन को वश में किया है उसे परम सुख प्राप्त होता है। वह उस पद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से पुनः गिरना नहीं पड़ता। वह जन्म-मृत्यु के पार हो जाता है। जिसके इन्द्रियरूप घोड़ों की मनरूपी लगाम अपने वश में है, वही रास्ता पार कर सकता है, परम पद को प्राप्त कर सकता है परंतु मनमुख अर्थात् पराधीन मनुष्यों को सर्वदा दुःखी ही रहना पड़ता है।

पराधीन सपनेहूँ सुख नाहीं।

अतः प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अपने मन को सदैव वश में रखे। जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से हर प्रकार से निवृत्त रहती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर, शांत और गंभीर रहती है। उसे ही सब सुख प्राप्त होते हैं। इन्द्रियों को स्वच्छन्द कर देने से अपनी शक्ति क्षीण हो जाती है और इसी निर्बलता के कारण मनुष्य को दुःख भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है अर्थात् इन्द्रियों को स्वच्छंद न कर अपने वश में रखता है और उन्हें विषयों के जंगल में नहीं भटकने देता, उसकी शक्ति उसके भीतर ही सुरक्षित रहती है। अपनी इसी शक्ति के बल से वह परम सुख को प्राप्त कर लेता है। अपनी भीतर शक्ति की अधिकता ही सुख है।

यदि सुख भोगना चाहते हो तो मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने दास बनाओ। उनके अधीन होकर अपना अमूल्य जीवन नष्ट मत करो।

धिक्कार है उस अर्थ को, धिक्कार है उस कर्म को।
धिक्कार है उस काम को, धिक्कार है उस धर्म को।।
जिससे न होवे शांति, उस व्यापार में क्यों सक्त हो।
पुरूषार्थ अंतिम सिद्ध कर, मत भोग में आसक्त हो।।

इसलिए जो व्यक्ति सुख का इच्छुक है, उसे अपने मन को विषयों से हटाकर अपने वश में रखने का उद्यम करना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दुनिया तो मुसाफिरखाना है

यह समस्त दुनिया तो एक मुसाफिरखाना(सराय) है। दुनियारूपी सराय में रहते हुए भी उससे निर्लेप रहा करो। जैसे कमल का फूल पानी में रहता है परंतु पानी की एक बूँद भी उस पर नहीं ठहरती, उसी प्रकार संसार में रहो।

तुलसीदासजी कहते हैं-

तुलसी इस संसार में भांति भांति के लोग।
हिलिये मिलिये प्रेम सौं नदी नाव संयोग।।

जैसे नौका में कई लोग चढ़ते, बैठते और उतरते हैं परंतु कोई भी उसमें ममता या आसक्ति नहीं रखता, उसे अपना रहने का स्थान नहीं समझता, ऐसे ही हम भी संसार में सबसे हिल-मिलकर रहे परंतु संसार में आसक्त न बनें। जैसे, मुसाफिरखाने में कई चीजें रखी रहती हैं किंतु मुसाफिर उनसे केवल अपना काम निकाल सकता है, उन्हें अपना मानकर ले नहीं जा सकता। वैसे ही संसार के पदार्थों का शास्त्रानुसार उपयोग तो करो किंतु उनमें मोह-ममता न रखो। वे पदार्थ काम निकालने के लिए हैं, उनमें आसक्ति रखकर अपना जीवन बरबाद करने के लिए नहीं हैं।

सपने के संसार पर, क्यों मोहित किया मन मस्ताना है?
घर मकान महल न अपने, तन मन धन बेगाना है,
चार दिनों का चैत चमन में, बुलबुल के लिए बहाना है,
आयी खिजाँ हुई पतझड़, था जहाँ जंगल, वहाँ वीराना है,
जाग मुसाफिर कर तैयारी, होना आखिर रवाना है,
दुनिया जिसे कहते हैं, वह तो स्वयं मुसाफिरखाना है।

अपना असली वतन आत्मा है। उसे अच्छी तरह से जाने बिन शांति नहीं मिलेगी और न ही यह पता लगेगा कि 'मैं कौन हूँ'। जिन्होंने स्वयं को पहचाना है, उन्होंने ईश्वर को जाना है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मन जीते वही बुद्धिमान

जब तक मन नहीं मरा, तब तक वेदान्त का ज्ञान अच्छा नहीं लगता। विद्यारण्य स्वामी अपनी पुस्तक 'जीवन्मुक्त विवेक' में कहते हैं कि 'सहस्र अंकुरों, टहनियों और पत्तोंवाले संसाररूपी वृक्ष की जड़ मन ही है। यह आवश्यक है कि संकल्प को दबाने के लिए मन का रक्त बलपूर्वक सुखा देना चाहिए, उसका नाश कर देना चाहिए। ऐसा करने से यह संसाररूपी वृक्ष सूख जायेगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं- 'मन का स्वच्छंद होना ही पतन का कारण है एवं उसका निग्रह होना ही उन्नति का कारण है। अतः अनेक प्रकार की अशांति के फलदाता संसाररूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ने का तथा अपने मन को वश करने का उपाय केवल मनोनिग्रह ही है।

हृदयरूपी वन में फन उठाकर बैठा साँप मन है। इसमें संकल्प-विकल्परूपी घातक विष भरे होते हैं। ऐसा मनरूपी साँप जिसने मारा है, उस पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की तरह पूर्ण हुए निर्विकार पुरूष को मैं नमस्कार करता हूँ।

ज्ञानी का मन नाश को प्राप्त होता है परंतु अज्ञानी का मन उसे बाँधने वाली एक जंजीर है। जब तक परम तत्त्व के दृढ़ अभ्यास से अपने मन को जीता नहीं जाता, तब तक वह आधी रात में नृत्य करने वाले प्रेत, पिशाच आदि की तरह नाचता रहता है।

वर्तमान परिवर्तनशील जीवन में मनुष्य को सत्ता एवं प्रभुता से प्रीति हो गयी है। इसका मूल कारण है, अपने में अपूर्णता का अनुभव करना। 'मैं शरीर हूँ' यह भावना मिट जाने से देह की आसक्ति हट जाती है। देह में आसक्ति हट जाने से देह तथा उससे सम्बन्धित पदार्थों और सम्बन्धों में किंचित् भी ममता नहीं रहती।

जिसके चित्त से अभिमान नष्ट हो गया, जो संसार की वस्तुओं में मैं-मेरा का भाव नहीं रखता उसके मन में वासनाएँ कैसे ठहर सकती हैं ? उसकी भोग-वासनाएँ शरद ऋतु के कमल के फूल की तरह नष्ट हो जाती हैं। जिसकी वासनाएँ नष्ट हो गयीं वह मुक्त ही तो है।

जो हाथ से दबाकर, दाँतों से दाँतों को भींचकर, कमर कसकर अपने मन-इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं, वे ही इस संसार में बुद्धिमान एवं भाग्यवान है। उनकी ही गिनती देवपुरूषों में होती है।

इस संसाररूपी वन का बीज चित्त है। जिसने इस बीज को नष्ट कर लिया, उसे फिर कोई भी भय-बाधा नहीं रहती। जैसे, केसरी सिंह जंगल के विभिन्न प्रकार के खूँखार प्राणियों के बीच भी निर्भय होकर विचरता है, उसी प्रकार वह पुरूष भी संसार की विघ्न-बाधाओं, दुःख-सुख तथा मान-अपमान के बीच भी निर्भय एवं निर्द्वन्द्व होकर आनंदपूर्वक विचरण करता है।

सभी लोग सदा सुखी, आनंदित एवं शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं परंतु अपने मन को वश में नहीं करते। मन को वश करने से ये सभी वस्तुएँ सहज में ही प्राप्त हो जाती हैं परंतु लोग मन को वश न करके मन के वश हो जाते हैं। जो मन में आया वही खाया, मन में आया वही किया। संत एवं शास्त्र सच्चा मार्ग बताते हैं परंतु उनके वचनों आदर-आचरण नहीं करते और मन के गुलाम हो जाते है। परंतु जो संत एवं शास्त्र के ज्ञान को पूरी तरह से पचा लेता है वह मुक्त हो जाता है। वह सिर्फ मन का ही नहीं अपितु त्रिलोकी का स्वामी हो जाता है।

अतः महापुरूषों द्वारा बतायी हुई युक्तियों से मन को वश में करो। **'जिसने मन जीता, उसने जग जीता'।** क्योंकि जगत का मूल मन ही है। जब मन अमनीभाव को प्राप्त होगा तब तुम्हारा जीवन सुखमय, आनंदमय, परोपकारमय हो जायगा।

अनुक्रम
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अज्ञान-नशे को उतारना ही सबसे श्रेष्ठ उपलब्धि

परमात्मा और परमात्मप्राप्त महापुरूषों के प्रति सदैव प्रेम रखना चाहिए, यही कल्याण का मार्ग है। परंतु प्यारे ! यह प्रेम जितना भीतर से रखा जायगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। आत्मदर्शी महापुरूष को भूलकर भी शरीर की भावना से नहीं देखना चाहिए, अपितु उन्हें पूर्ण सच्चिदानंदस्वरूप समझना चाहिए।

तत्त्वदृष्टि से देखें तो वे महापुरूष और हम एक ही हैं, जरा भी भेद नहीं है परंतु वे स्वयं को परमात्मा से अभिन्न जानते हैं, जबकि हम स्वयं को ईश्वर से अलग(शरीर) मानते हैं और यही हमारे दुःख का कारण है।

हमारे सामने यह उद्देश्य होना चाहिए की हम स्वयं को पहचान लें, विकारों-वासनाओं की दलदल से ऊपर उठकर परमेश्वरीय सुख पायें, जन्म-मरण आदि दुःखों से सदा के लिए छुटकारा पाकर मुक्त हो जायें तथा जीवन्मुक्ति का आनंद लें। जीवात्मा और परमात्मा दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। जैसे, एक बोरे में गेहूँ पड़ा है तथा उसी के पास एक अन्य डिब्बे में गेहूँ पड़ा है। यदि डिब्बे और बोरे का विचार छोड़ दो तो शेष गेहूँ ही बचेगा।

एक व्यक्ति भालू का अभिनय कर रहा था। उसे अधिक भाँग पिला दी गयी, जिससे उसे कोई होश नहीं रहा। वह स्वयं को सचमुच का भालू समझकर लोगों को काटने की चेष्टा करने लगा। जब उसे खटाई खिलाई गयी और उसे होश आया, तब वह अपने द्वारा की गई मूर्खता पर हँसने लगा। इसी प्रकार हमें भी अज्ञानरूपी नशा चढ़ा हुआ है। हम स्वयं को देह समझ बैठे हैं। अतः हमें ऐसे ब्रह्मज्ञानी गुरू की आवश्यकता है, जो अपनी ज्ञानरूपी खटाई खिलाकर हमारे अज्ञानरूपी नशे को उतार दें और हमें अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाय।

शरीर की आसक्ति ही जीव को दुःख देती है। अर्जुन बड़े मोह में पड़ गया था। जब श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान दिया, तब उसे समझ में आया कि जैसे स्वप्न की सृष्टि है वैसे ही यह भी मुझ साक्षी, द्रष्टा के सपने की सृष्टि है, बाजी है।

बाजीगर जैसे बाजी पाये, लोग तमाशे आये।

बार-बार आत्मचिंतन करने से आत्मा में हमारी स्थिति हो सकती है। जो (अपने को) शिष्य कहलाता है वह यदि शिष्य बनकर ही रहा, गुरून बना तो शिष्य बनकर क्या किया ? अर्थात् यदि वह पूर्ण ज्ञानी नहीं बना और सदैव अज्ञान के अंधकार में ही रहा अर्थात् अपने को हाड़-मांस एवं मल मूत्र से भरी हुई देह ही समझता रहा तो फिर उसे शिष्य बनने का पूर्ण लाभ नहीं मिला।

ज्ञानी गुरू की शरण में रहते हुए उनकी ज्ञानरूपी खटाई को पचाकर अपने अज्ञान के नशे को उतारना, यही मनुष्य-देह की सबसे श्रेष्ठ उपलब्धि है। यही परम कल्याण है। यही परम शांति, परमानंद एवं परम पद की प्राप्ति है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ5

भोजन का प्रभाव

सुखी रहने के लिए स्वस्थ रहना आवश्यक है। शरीर स्वस्थ तो मन स्वस्थ। शरीर की तंदुरूस्ती भोजन, व्यायाम आदि पर निर्भर करती है। भोजन कब एवं कैसे करें, इसका ध्यान रखना चाहिए। यदि भोजन करने का सही ढंग आ जाय तो भारत में कुल प्रयोग होने वाले खाद्यान्न का पाँचवाँ भाग बचाया जा सकता है।

भोजन नियम से, मौन रहकर एवं शांत चित्त होकर करो। जो भी सादा भोजन मिले, उसे भगवान का प्रसाद समझकर खाओ। हम भोजन करने बैठते हैं तो भी बोलते रहते हैं। 'पद्म पुराण' में आता है कि 'जो बातें करते हुए भोजन करता है, वह मानों पाप खाता है।' कुछ लोग चलते-चलते अथवा खड़े-खड़े जल्दबाजी में भोजन करते हैं। नहीं ! शरीर से इतना काम लेते हो, उसे खाना देने के लिए आधा घंटा, एक घंटा दे दिया तो क्या हुआ ? यदि बीमारियों से बचना है तो खूब चबा-चबाकर खाना खाओ। एक ग्रास को कम से कम 32 बार चबायें। एक बार में एक तोला (लगभग 11.5 ग्राम) से अधिक दूध मुँह में नहीं डालना चाहिए। यदि घूँट-घूँट करके पियेंगे तो एक पाव दूध भी ढाई पाव जितनी शक्ति देगा। चबा-चबाकर खाने से कब्ज दूर होती है, दाँत मजबूत होते हैं, भूख बढ़ती है तथा पेट की कई बीमारियाँ भी ठीक हो जाती हैं।

भोजन पूर्ण रूप से सात्त्विक होना चाहिए। राजसी एवं तामसी आहार शरीर एवं मन बुद्धि को रूग्न तथा कमजोर करता है। भोजन करने का गुण शेर से ग्रहण करो। न खाने योग्य चीज को वह सात दिन तक भूखा होने पर भी नहीं खाता। मिर्च-मसाले कम खाने चाहिए। मैं भोजन पर इसलिए जोर देता हूँ क्योंकि भोजन से ही शरीर चलता है। जब शरीर ही स्वस्थ नहीं रहेगा तब साधना कहाँ से होगी ? भोजन का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। इसीलिए कहते हैं- **'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।'** अतः सात्त्विक एवं पौष्टिक आहार ही लेना चाहिए।

मांस, अण्डे, शराब, बासी, जूठा, अपवित्र आदि तामसी भोजन करने से शरीर एवं मन-बुद्धि पर घातक प्रभाव पड़ता है, शरीर में बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। मन तामसी स्वभाववाला, कामी, क्रोधी, चिड़चिड़ा, चिंताग्रस्त हो जाता है तथा बुद्धि स्थूल एवं जड़ प्रकृति की हो जाती है। ऐसे लोगों का हृदय मानवीय संवेदनाओं से शून्य हो जाता है।

खूब भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए। खाने का अधिकार उसी का है जिसे भूख लगी हो। कुछ नासमझ लोग स्वाद लेने के लिए बार-बार खाते रहते हैं। पहले का खाया हुआ पूरा पचा न पचा कि ऊपर से दुबारा ठूँस लिया। ऐसा नहीं करें। भोजन स्वाद लेने की वासना से नहीं अपितु भगवान का प्रसाद समझकर स्वस्थ रहने के लिए करना चाहिए।

बंगाल का सम्राट गोपीचंद संन्यास लेने के बाद जब अपनी माँ के पास भिक्षा लेने आया तो उसकी माँ ने कहाः "बेटा ! मोहनभोग ही खाना।" जब गोपीचन्द ने पूछाः "माँ ! जंगलों में कंदमूल-फल एवं रूखे-सूखे पत्ते मिलेंगे, वहाँ मोहनभोग कहाँ से खाऊँगा ?" तब उसकी माँ ने अपने कहने का तात्पर्य यह बताया कि "जब खूब भूख लगने पर भोजन करेगा तो तेरे लिए कंदमूल-फल भी मोहनभोग से कम नहीं होंगे।"

चबा-चबाकर भोजन करें, सात्त्विक आहार लें, मधुर व्यवहार करें, सभी में भगवान का दर्शन करें, सत्पुरूषों के सान्निध्य में जाकर आत्मज्ञान को पाने की इच्छा करें तथा उनके उपदेशों का भलीभाँति मनन करें तो आप जीते-जी मुक्ति का अनुभव कर सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

द्वैत का मूल कल्पना में

आत्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान ही मुक्ति है। वास्तव में आप शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं प्राण इन पाँचों से पृथक, सबको सत्ता देने वाले हो। आप ईश्वर से अभिन्न हो परंतु हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मत्सररूपी चूहों ने बिल बनाकर कचरा भर दिया है। विषयों की तृष्णा ने आत्मानंदरूपी दीपक को बुझाकर अज्ञान का अंधकार फैला दिया है।

अब प्रश्न है कि कचरा कैसे निकाला जाये ? झाड़ू लगाने से। बिल कैसे बंद हों ? पत्थर तथा कंकरीट भरने से। अंधकार कैसे दूर हो ? प्रकाश करने से।

संकल्प विकल्प कम करना, यह झाड़ू लगाना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह व मत्सर इन पाँचों चोरों से अपने को बचान, यह बिलों को बंद करना है तथा आत्मज्ञान का विचार करना, यह प्रकाश करना है। ज्ञान का प्रकाश करके अविद्यारूपी अंधकार को हटाना है। आपकी हृदय गुफा में तो पहले से ही ऐसा दीपक विद्यमान है, जिसका तल और बाती कभी समाप्त ही नहीं होती। आवश्यकता है तो बस, ऐसे सदगुरू की जो अपनी ज्ञानरूपी ज्योत से आपकी ज्योत को जला दें।

जैसे सूर्य के ताप से उत्पन्न बादल कुछ समय के लिए सूर्य को ही ढँक लेते हैं, ऐसे ही आप भी अज्ञान का पर्दा चढ़ गया है। जैसे जल में उत्पन्न बुदबुदा जल ही है, परंतु वह जल तब होगा जब अपना परिच्छिन्न अस्तित्व छोड़ेगा।

बुदबुदे एवं लहरें सागर से प्रार्थना करने लगीं- "हे सागर देवता ! हमें अपना दर्शन कराइये।" सागर ने कहाः "ऐ मूर्खो ! तुम लोग मुझसे भिन्न हो क्या ? तुम स्वयं सागर हो, अपना स्वतंत्र अस्तित्व मानकर तुमने स्वयं को मुझसे भिन्न समझ लिया है।" इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। अज्ञानतावश द्वैत का भ्रम हो गया है।

एक संत ने अपने शिष्य से कहाः "बेटा ! एक लोटे में गंगाजल भरकर ले आओ।" शिष्य दौड़कर पास ही में बह रही गंगा नदी से लोटे में जल भरके ले आया। गुरू जी ने लोटे के जल को देखकर शिष्य से कहाः "बेटा ! यह गंगाजल कहाँ है ? गंगा में तो नावें चल रही हैं, बड़े-बड़े मगरमच्छ और मछलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं, लोग स्नान पूजन कर रहे हैं। इसमें वे सब कहाँ हैं ?"

शिष्य घबरा गया। उसने कहाः "गुरूजी ! मैं तो गंगाजल ही भरकर लाया हूँ।" शिष्य को घबराया हुआ देख संतश्री ने कहाः "वत्स ! दुःखी न हो। तुमने आज्ञा का ठीक से पालन किया है। यह जल कल्पना के कारण गंगाजल से भिन्न भासता है, परंतु वास्तव में है वही। फिर से जाकर इसे गंगाजी में डालोगे तो वही हो जायेगा। रत्तीभर भी भेद नहीं देख पाओगे। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा, भ्रांति के कारण अलग-अलग भासित होते हैं। वास्तव में हैं एक ही। मन की कल्पना से जगत की भिन्नता भासती है, परंतु वास्तव में एक ईश्वर ही सर्वत्र विद्यमान है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विकारों से बचने हेतु संकल्प-साधना

विषय विकार साँप के विष से भी अधिक भयानक हैं। इन्हें छोटा नहीं समझना चाहिए। सौ मन दूध में विष की एक बूँद डालोगे तो परिणाम क्या मिलेगा ? पूरा सौ मन व्यर्थ हो जाएगा।

साँप तो काटेगा, तभी विष चढ़ पायेगा किंतु विषय विकार का केवल चिंतन हो मन को भ्रष्ट कर देता है। अशुद्ध वचन सुनने से मन मलिन हो जाता है।

अतः किसी भी विकार को कम मत समझो। विकारों से सदैव सौ कौस दूर रहो। भ्रमर में कितनी शक्ति होती है कि वह लकड़ी को भी छेद देता है, परंतु बेचारा फूल की सुगंध पर मोहित होकर, पराधीन होकर अपने को नष्ट कर देता है। हाथी स्पर्श के वशीभूत होकर स्वयं को गड्ढे में डाल देता है। मछली स्वाद के कारण काँटे में फँस जाती है। पतंगा रूप के वशीभूत होकर अपने को दीये पर जला देता है। इन सबमें सिर्फ एक-एक विषय का आकर्षण होता है फिर भी ऐसी दुर्गति को प्राप्त होते हैं, जबकि मनुष्य के पास तो पाँच इन्द्रियों के दोष हैं। यदि वह सावधान नहीं रहेगा तो तुम अनुमान लगा सकते हो कि उसका क्या हाल होगा ?

अतः भैया मेरे ! सावधान रहें। जिस-जिस इन्द्रिय का आकर्षण है उस-उस आकर्षण से बचने का संकल्प करें। गहरा श्वास लें और प्रणव (ओंकार) का जप करें। मानसिक बल बढ़ाते जायें। जितनी बार हो सके, बलपूर्वक उच्चारण करें। फिर उतनी ही देर मौन रहकर जप करें। आज उस विकार में फिर से नहीं फँसूँगा या एक सप्ताह तक अथवा एक माह तक नहीं फँसूँगा... ऐसा संकल्प करें। फिर से गहरा श्वास लें। 'हरि ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ.... हरि ॐॐॐॐॐ...'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शांति कैसे पायें ?

मन को शुद्ध किये बिना शांति प्राप्ति नहीं होगी। लोग कहते हैं कि 'शांति चाहिए।' यदि सचमुच शांति चाहते हो तो कमर कसकर हृदय शुद्ध करो और जीवन्मुक्त हो जाओ। हृदय रूपी वन में मनरूपी सर्प फन निकालकर बैठा है। उसमें संकल्प-विकल्परूपी घातक विष है। जब मन एवं इन्द्रियों का वश करोगे तब तुम्हें तत्त्व का ज्ञान होगा।

यह शरीर एक दर्पण है। इसके भीतर जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार बैठे हैं वे इस पर आवरण हैं। जैसे दर्पण के ऊपर पर्दा होगा तो उसमें मुख नहीं दिखेगा, ऐसे ही विकारों का आवरण सच्ची शांति को ढँक लेता है।

साधारण मनुष्य शरीर को सजाने तथा उसके पालन में ही जीवन बिता देते हैं। अज्ञान से इस शरीर को सदैव रहने वाला समझकर ईर्ष्या, वैर और कलह की आग में जलते है। ऐसे लोग उन चूहों के समान हैं, जिनके पीछे मौतरूपी बिल्ली का पंजा उठा है और उन्हें इस बात का पता ही नहीं। यदि मनुष्य विवेकपूर्वक मौत को याद करे तो उससे कुकर्म और पाप होंगे ही नहीं।

जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल पाओगे। कोई भी कर्म छोटा मत समझो। छोटी-सी भूल भी पहाड़ की तरह समझनी चाहिए। इसलिए मन को बार-बार समझाओ कि 'हे मन ! यह क्या कर रहा है ? तृष्णारूपी जल में गोते खा रहा है ? अमूल्य मनुष्य जन्म को भोगों में बरबाद कर रहा है ?'

उत्तम मनुष्य वही है जिसने शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति की है अर्थात् जिसका शरीर नीरोग व मन पवित्र है तथा जिसने अपनी आत्मा को जाना है।

अनित्य पदार्थों को नित्य समझकर हम बड़ी ही भूल कर रहे हैं। अनित्य पदार्थों की तो चिंता करते हैं, परंतु हम स्वयं क्या हैं यह तो सोचते ही नहीं। कितने दुःख की बात है !

शरीर नाशवान है। संसार के पदार्थ भी मिथ्या ही हैं, केवल आत्मा ही सत्य एवं शाश्वत है। मनुष्य शरीर, जाति, धर्म आदि से अपनी एकता करके उनका अभिमान करने लगता है और

उनके अनुसार स्वयं को कई बंधनों में बाँध लेता है। इससे उसका मन अशुद्ध रहता है। विचार, वाणी और व्यवहार में सच्चाई एवं पवित्रता रखने से मन पवित्र होता है।

शांति तीन प्रकार से प्राप्त होती है - सत्त्वगुण से, तत्त्वज्ञान से तथा निर्विकल्प समाधि की सुदृढ़ यात्रा से। पूर्ण शांति प्राप्ति करने का उपाय आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान के द्वारा रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण से भी ऊपर उठकर शांत पद, गुणातीत पद प्राप्त करना चाहिए। शुरूआत में यह कठिन लगता है, पर कठिन नहीं है। जिन्हें कठिन नहीं लगता, ऐसे महापुरूषों का मिलना कठिन है। संसार की नश्वर चीजों के लिए हम कितनी कठिनियाँ सहन करते आये हैं ! इस सनातन सुख को प्राप्त करने, सनातन सत्य को जानने के लिए थोड़ी सी कठिनाई सहन करने को तैयार हो जायें और सत्पुरूषों का मार्गदर्शन मिल जाय तो खुद तो खुशहाल हो ही जायें, अनेकों का उद्धार करने वाले भी हो जायें....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मूल में ही भूल

प्रत्येक प्राणी का उद्देश्य है सर्व दुःखों का नाश और नित्य सुख की प्राप्ति। जो भी कार्य हम करते हैं, चाहे अच्छा भोजन करते हैं अथवा सिनेमा देखते हैं, उन सबके पीछे यही हेतु होता है कि सुख मिले। सुख भी हम ऐसा चाहते हैं जो सदा बना रहे, जिसका कभी नाश न हो। परंतु जीवनभर कर्म करने पर भी पूर्ण सुख नहीं मिलता। फिर आपके कर्म करने का क्या फायदा ? जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए आजीवन कड़ी मेहनत की, फिर भी वह न मिले तो मेहनत तो व्यर्थ ही गयी न ? जब आवश्यकता भी है और पुरूषार्थ भी है तो सफलता क्यों नहीं मिलती ? इस पर विचार किया है कभी ?

बात बड़ी सीधी सी है कि तड़प और पुरूषार्थ तो है परंतु सही दिशा नहीं है। जरा कल्पना करो कि एक व्यक्ति गर्मियों की तपती दोपहरी में रेगिस्तान से गुजर रहा है और उसे बड़ी प्यास लगी है। रेत पर जब धूप पड़ती है तो वह दूर से पानी की तरह दिखती है।

अब वह यात्री इधर-उधर दौड़ रहा है। जहाँ भी देखता है थोड़ी दूरी पर पानी होने का आभास होता है परंतु निकट जाता है तो रेत-ही-रेत और इसी प्रकार इधर-उधर भटककर बेचारा प्यासा मर जाता है।

अब उस यात्री को पानी की तड़प भी थी और उसे पाने के लिए पुरूषार्थ भी किया था, फिर भी प्यासा क्यों मरा ? क्योंकि पानी को रेगिस्तान में ढूँढ रहा था। जितनी मेहनत से वह रेत में इधर-उधर दौड़ता रहा, उतनी मेहनत करके किसी नदी या कुएँ तक पहुँच जाता तो प्यास भी बुझती और प्राण भी बचते। साधारण संसारी व्यक्ति की भी ऐसी ही दशा होती है। वह सुख

तो चाहता है सदा रहने वाला, परंतु उसे ढूँढता है क्षणभंगुर संसार में ! मिटने वाली और बदलने वाली वस्तुओं-परिस्थितियों से एक सा सुख कैसे मिल सकता है ?

शाश्वत सुख शाश्वत वस्तु से ही मिल सकता है और वह शाश्वत वस्तु है आत्मा। अब अनित्य पदार्थों में नित्य सुख ढूँढने वाला व्यक्ति यदि अपने पुरूषार्थ की दिशा बदल दे और नित्य आत्मसुख की प्राप्ति में लग जाय तो उसे लक्ष्यप्राप्ति में देर ही कहाँ लगेगी ! परंतु भगवान की यह माया बड़ी विचित्र है। जीव को वह इस प्रकार से भ्रमित कर देती है कि बेचारे को यह विवेक ही नहीं उपजता कि मैं रेगिस्तान में जल ढूँढकर अपने पुरूषार्थ एवं जीवन के अमूल्य समय को व्यर्थ में नष्ट कर रहा हूँ।

यदि नित्य सुख को वास्तव में प्राप्त करना हो तो बाह्य पदार्थों के असली स्वरूप को समझना पड़ेगा।

अंक 'एक' के बाद जितने शून्य लगते हैं, उसकी कीमत में उतनी ही वृद्धि होती है परंतु यदि एक को मिटा दिया जाय तो दाहिनी ओर कितनी भी शून्य हों उनका कोई मूल्य नहीं। उन बिन्दियों का मूल्य उस संख्या 'एक' के कारण है। इसी प्रकार संसार की पदार्थों की सत्ता है ही नहीं। जब हम उस सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करके उसकी ओर चलते हैं तो हमारे पास उपलब्ध पदार्थों का उपयोग भी उसी सत्कार्य में होता है। अतः उनकी शोभा बढ़ती है। परंतु जब हम उस 'एक' का अस्तित्व भुला बैठते हैं तो हमारे पास शून्यरूपी वस्तुएँ कितनी भी क्यों न हों, वे दुःखदायी ही होती हैं तथा पापकर्म और जन्म-मरण का कारण बनती हैं।

जो लोग विषय-भोगों को मक्खन और पेड़ा समझते हैं वे मानों चूना खाते हैं। चूना खाने वाले की क्या दशा होती है यह सभी जानते हैं। बेचारा बेमौत मरा जाता है।

हमारी चाह तो उत्तम है परंतु उसे पाने का जो प्रयत्न कर रहे है उसके मूल में ही भूल है। हम अनित्य पदार्थों को नित्य समझकर उनसे सुख लेना चाहते हैं। शरीर हमारा है इससे सुख लें, परंतु शरीर का क्या भरोसा ? इस पर गर्व किसलिये ? जब शरीर ही स्थिर नहीं है तो फिर शरीर को मिलने वाले पदार्थ, विषय, सम्बन्ध आदि कहाँ से स्थिर होंगे ? धन इकट्ठा करने और सम्मान प्राप्त करने के लिए हम क्या-क्या नहीं करते, यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि यह सब अंत में काम नहीं आयेगा। अस्थिर पदार्थों की तो बड़ी चिंता करते हैं परंतु हम वास्तव में क्या हैं, यह कभी सोचते ही नहीं। हम ड्राइवर हैं परंतु स्वयं को मोटर समझ बैठे हैं, हम मकान के स्वामी हैं परंतु अपने को मकान समझते हैं। हम अमर आत्मा है परंतु अपने को शरीर समझ बैठे हैं। बस यही भूल है, जिसने हमें सुख के लिए भटकना सिखाया है।

संसार की कोई भी वस्तु सुन्दर और आनंदरूप नहीं है। सुन्दर और आनंदरूप एक परमात्मा ही है। उसी के सौन्दर्य का थोड़ा अंश प्राप्त होने से यह संसार सुन्दर लगता है। उस आनंदस्वरूप की सत्ता से चल रहा है इसीलिए इसमें भी आनंद भासता है। अतः हमें चाहिए कि संसार के पदार्थ जिसकी सत्ता से आनंददायी व सुखरूप भासते हैं, उसी ईश्वर से अपना दिल

मिलाकर भगवदानंद प्राप्त करें जो इस शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता, किंतु शर्त यह है कि हम अपने पुरूषार्थ को उस ओर लगायें। हम उद्यम कर सकते हैं, कष्ट भी सह सकते हैं, केवल इच्छा को परिवर्तित करना होगा। ऐसा आज तक नहीं हुआ कि मनुष्य को किसी पदार्थ की प्रबल इच्छा हो और वह उसे प्राप्त न हुआ हो।

प्रत्येक प्राणी की दौड़ आनंद की ओर है। चाहे करोड़पति क्यों न हो, वह भी सुख के लिए, आनंद के लिए ही भागता-फिरता है। यहाँ तक कि मकोड़ी भी आनंद की प्राप्ति के लिए ही दौड़ रही है। वह भी दुःख नहीं चाहती, मरना नहीं चाहती। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी आनंद के लिए दौड़ रहा है परंतु उसे नश्वर वस्तुओं में ढूँढता है। इसलिए दौड़-भाग में ही समय पूरा हो जाता है, आनंद मिलता ही नहीं।

नानकजी ने फरमाया हैः

नानक दुखिया सब संसार। दुःख संसार में है परंतु आत्मा में तो संसार है ही नहीं और वह आत्मा हमारी जान है। यदि उस आत्मा को पाने को यत्न करोगे तो तुम्हें आनंद और सुख के अतिरिक्त कुछ दिखेगा ही नहीं। प्रबल इच्छा और उद्यम हो तो इच्छित वस्तु प्राप्त होकर ही रहती है।

अतः सज्जनो ! चित्त में प्रबल इच्छा रखो और उद्यम करो, परंतु किसके लिये ? नश्वर और तुच्छ संसार के लिए ? नहीं। वह तुम्हारे साथ सदा नहीं रहेगा क्योंकि संसार अनित्य है। जो स्वयं अनित्य है वह तुम्हें नित्य सुख कैसे देगा ? जैसे, साँप बाहर से तो चमकीला और कोमल दिखता है परंतु उसकी असलियत क्या होती है यह तुम जानते हो। ऐसे ही संसार भी दिखने भर को सुन्दर लगता है, इसकी असलियत जाननी हो तो विवेक दे देखो सब पता चल जायगा। इसलिए इच्छा करो मुक्तात्मा होने की, अपने-आपको खोजने की, अपने मुक्त आत्मा को जानने की और उद्यम करो नित्य सुखस्वरूप, आनंदस्वरूप, अविनाशी आत्मा को पाने के लिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

..........तो दुनिया में नहीं फँसोगे !

अंतःकरण में ज्ञान, आँखों में वैराग्य और मुख में भक्ति रखो तो दुनिया में नही फँसोगे। मन को संसार के विषयों से निकालकर अंतर्मुख करो, तब सभी वासनाएँ मिट जाएँगी, विकार दूर हो जायेंगे। दुनिया में कोई किसी का वैरी नहीं है। मन ही मनुष्य का वैरी और मित्र है।

कोई भी व्यक्ति आपदा में पड़कर पथभ्रष्ट होना नहीं चाहता। नदी के तट की ओर तैरकर जा रहे मुसाफिर को नदी में रहने वाले मगरमच्छ घसीटकर बीच में ले जाकर अपना शिकार बनाते है। इसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पाँच शत्रु हैं। ये मगरमच्छ की

तरह मुँह फाड़कर हम पर समय-समय पर आक्रमण करते रहते हैं। इनसे बचने का क्या उपाय है ? उपाय आसान है। इनका दुर्ग मन है। यदि यह मन वश में आ गया तो ये शत्रु कुछ भी कर सकेंगे। मन वश होता है अभ्यास, वैराग्य और सच्चे संतों के सान्निध्य से।

भगवान श्रीराम के गुरू वसिष्ठजी ने 'उत्तर रामायण' में कहा है कि 'सत्संग महान धर्म है। जिसे धर्म का स्वरूप देखना हो उसे सत्संग में जाना चाहिए। सत्सग की एक पंक्ति भी यदि आचरण में आ जाय तो बेड़ा पार हो जाता है।'

यदि मनुष्य शरीर पाकर भी तुमने सत्-स्वभाव को धारण नहीं किया तो फिर मनुष्य बनकर संसार में आने का क्या लाभ हुआ ? हृदय में ज्ञान के सूर्य को जगाना चाहिए। भगवद् ध्यान में डूबो। यदि भगवान में डूब गये तो जन्म मृत्यु के महादुःख से छूट जाओगे।

शांत हृदय में ही सत्-चित् और आनंदस्वरूप परब्रह्म के साक्षात् दर्शन हो सकते हैं। जो व्यक्ति बहुत प्रवृत्ति के कारण परम तत्त्व का ध्यान नहीं कर सकता, उसे प्रवृत्ति में रहते हुए भी ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। परम तत्त्व का ध्यान करने वाला उसी में लीन हो जाता है। विषय को ज्ञा से अलग कर लो तो शेष क्या रहेगा ? एक स्वयं ज्योति ही अपने-आप में स्थित रहेगी।

समुद्र की भांति महा गम्भीर होकर रहो। सागर को जल की कोई इच्छा नहीं रहती, किंतु नदियाँ स्वयं ही उसमें आकर प्रवेश करती हैं। आप भी ऐसे ही बनो। किसी विषय के आगे दीन मत बनो। जब हम छाया को पकड़ने के लिए दौड़ते हैं तो वह हाथ नहीं आती, किंतु जब सूर्य की ओर चलते हैं तो छाया पीछे-पीछे फिरती है। इसी प्रकार जो संसार के पदार्थों के प्रति अनासक्त तथा ईश्वरप्राप्ति के लिए तत्पर रहते है, माया उनके पीछे-पीछे दौड़ लगाती है।

बहिर्मुख बनोगे तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार - ये पाँच चोर आपको लूटकर भिखारी बना देंगे। इसलिए सदा सर्वसमर्थ ईश्वर के संरक्षण में रहो। ईश्वर के सतत चिंतन करना ही उनके संरक्षण में रहना है।

हे मानव ! तू दीन होकर दर-दर क्यों भटकता है ? तेरा पेट तो एक सेर आटे से भी भर सकता है। ईश्वर तो उस सागर को भी भोजन पहुँचाता है, जिसका शरीर लाखों कोसों तक फैला हुआ है। ....तो फिर ऐ मूर्ख ! तू आत्मा में विश्राम क्यों नहीं पाता ? क्यों अपनी आयु गँवा रहा है ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आर्य वीरो ! अब तो जागो......

5 हजार वर्ष से आलस्य एवं भोगरूपी निद्रा में सोये हुए भारत माता के होनहार युवको ! बहुत सो चुके हो, अब तो जागो। जरा देखो तो, तुम्हारे देश की कैसी अवस्था हो रही है !

अत्याचार, पाप, अनैतिकता और भ्रष्टाचार बढ़ रहे हैं। माताओं और बहनों का सतीत्व लूटा जा रहा है। देश में नैतिकता और आध्यात्मिकता का ह्रास होता जा रहा है। अन्यायी और अत्याचारी तुम्हें निगलने के लिए तैयार बैठे है। अब उठो, तुम्हारी भारत माता तुम्हारे सिरहाने के पास आकर तुम्हें जगा रही है।

'खाओ, पियो और मौज करो' यह तो आजकल के जवानों का नारा हो गया है। ऐ जवानो ! तुम क्या खा पी सकते हो ? तुमसे अधिक तो पशु खा पी सकते हैं। मनुष्य शरीर में क्या खा सकते हो ? कभी हाथी का शरीर मिलेगा तो कई मन खा जाओगे तो भी तुम्हें कोई पेटू नहीं कहेगा। मनुष्य योनि में आये हो तो कुछ ऐसा कर लो ताकि प्रशंसा का मुकुट बाँधकर मुस्कराते हुए प्रियतम परमात्मा से मिल सको।

इस शरीर से तुम कितने भोग भोगोगे ? तुमसे अधिक भोग भोगने की शक्ति तो बकरे, घोड़े और कुत्ते में है। विषयों के क्षणिक आनंद में मत बहो। सबसे अधिक आनंद तो स्वयं को पहचानने में है। यह मनुष्य जन्म तुम्हें बड़े भाग्य से मिला है। इसका सदुपयोग करके स्वयं को पहचान लो, नहीं तो सब कुछ व्यर्थ चला जायगा और चौरासी के चक्कर में भटकाकर रोते रहोगे।

उपनिषदों में लिखा है कि 'संसार की कोई भी वस्तु आनंदमय नहीं है। शरीरसहित संसार के सारे पदार्थ क्षणिक अस्तित्व वाले हैं, किंतु आत्मा अजर-अमर है, परमानंदस्वरूप है।'

लँगड़ा कौआ मत बनो, शाहबाज बनो। केवल अपने लिए नहीं, सभी के लिये जियो। परोपकार उत्तम गुण है। संतों का धन क्या है ? परोपकार। बुरे व्यक्ति अच्छे कार्य में विघ्न डालते रहेंगे परंतु **'सत्यमेव जयते।'** यहाँ नहीं तो वहाँ देर-सवेर सत्य की ही जीत होती है। धर्म का अंग सत्य है। एक सत् को धारण करो तो समस्त दुष्ट स्वभाव नष्ट हो जायेंगे। विघ्नों को चूर्ण करो। हिम्मत रखो, दृढ़ निश्चय करो।

महान आत्मा बनो। ऐसा न सोचो कि 'मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ?' स्वामी विवेकानंद भी अकेले ही थे, फिर भी उन्होंने भारत को गुलाम बनाने वाले गोरों के देश में जाकर भारतीय संस्कृति की ध्वजा फहरायी थी। स्वामी रामतीर्थ भी तो अकेले ही थे। महात्मा गाँधी भी अकेले ही चले थे, परंतु उन्होंने दृढ़ निश्चय रखा तो हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा उनके साथ हो गया। इन सभी का नाम अमर है। आज भी इनकी जयंतियाँ मनायी जाती हैं। एक आलू बोया जाय तो कालांतर में उससे सैंकड़ों मन आलू उत्पन्न हो सकते हैं। आम की एक गुठली बोने से हजारों आम पैदा किये जा सकते हैं।

स्वयं पर विश्वास रखो। शेर को यदि अपने-आप पर विश्वास न हो तो वह नींद कैसे ले सकता है ? वह तो वन के सभी प्राणियों का शत्रु है। हृदय में दिव्य गुणों को धारण करो तो तुम केवल अपने को ही नहीं अपितु दूसरों को भी तारोगे। जगत में यश-अपयश को सपना समझकर तुम अपने-आपको जानो।

अपने कर्त्तव्यपालन में अपने धर्म पर दृढ़ रहने के लिए चाहे जितने भी कष्ट आयें, उन्हें प्रसन्नता से रहना चाहिए। अंततः सत्य की ही जय होती है। तुम कहोगे कि कष्ट अच्छे नहीं होते परंतु मैं तुमसे कहता हूँ कि जिनमें कष्ट सहने की क्षमता नहीं है, वे दुनिया से निकल जायें। उन्हें संसार में रहने का कोई अधिकार नहीं है।

हे आर्य वीरो ! अब जागो। आगे बढ़ो। हाथ में मशाल उठाकर अत्याचार से टक्कर लेने और महान बनने के लिए आगे बढ़ो। आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो। सच्चे कर्मवीर बाधाओं से नहीं घबराते। अज्ञान, आलस्य और दुर्बलता को छोड़ो।

जब तक पूरा न कार्य हो, उत्साह से करते रहो।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो।।

नवयुवको ! पृथ्वी जल रही है। मानव-समाज में जीवन के आदर्शों का अवमूल्यन हो रहा है। अधर्म बढ़ रहा है, दीन-दुःखियों को सताया जा रहा है, सत्य को दबाया जा रहा है। यह सब कुछ हो रहा है फिर भी तुम सो रहे हो। उठकर खड़े हो जाओ। समाज की भलाई के लिए अपने हाथों में वेदरूपी अमृतकलश उठाकर लोगों की पीड़ाओं को शांत करो, अपने देश और संस्कृति की रक्षा के लिए अन्याय, अनाचार एवं शोषण को सहो मत। उनसे बुद्धिपूर्वक लोहा लो। सज्जन लोग संगठित हों। लगातार आगे बढ़ते रहो.... आगे बढ़ते रहो। विजय तुम्हारी ही होगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रसन्नता का महामंत्र

प्रायः प्रत्येक मनुष्य की यही भावना रहती है कि 'मैं सदैव सुखी रहूँ, कदापि दुःखी न होऊँ।' किंतु भैया ! सुख-दुःख आकाश से नहीं गिरता। अपने विचार ही मनुष्य को सुखी-दुःखी करते हैं। कोई खुशी के वातावरण में खूब मग्न हो, परंतु उसी समय यदि उसके मन में कोई दुःख का विचार आ गया तो वह उदास हो जायेगा।

अतः हे प्रिय ! यदि तुम सदैव प्रसन्न रहना चाहते हो तो यह अदभुत मंत्र याद रखो। **'यह भी बीत जायेगा।'** इसे सदा के लिए अपने हृदय पटल पर अंकित कर दो। यह वह मंत्र है, जिसके अभ्यास से मनुष्य सुख-दुःख के समय स्वयं को सँभालकर सावधान हो सकता है और उसमें फँसने से बच सकता है, समरसता के परम सुख में प्रतिष्ठित हो सकता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परम कल्याण का मार्ग

अनेक संतों, ऋषि-मुनियों ने मनुष्य जन्म की बड़ी महिमा गायी है। भगवान श्रीराम ने भी कहाः **बड़े भाग मानुष तन पावा।** देवयोनियों में सिर्फ भोग-सामग्रियाँ हैं। पशुयोनियों में दुःख और मूढ़ता है। एक मनुष्ययोनि ही ऐसी है, जिसमें सब दुःखों से सदा के लिए छुटकारा पाने का अवसर मिलता है।

सारे दुःखों का मूल कारण आत्म-अज्ञान है। इस अज्ञान को मिटाने के लिए आत्मविचार करो। स्वयं से बार बार पूछो कि 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? और कहाँ जाना है ?' इस प्रकार आत्मचिंतन करते-करते अज्ञान कम होने लगेगा और आपका वास्तविक सुख प्रकट होने लगेगा।

जगत के पदार्थों की तृष्णा मत करो। तृष्णा का पेट बहुत बड़ा होता है, वह कभी नहीं भरता। तृष्णा को संतोष से मिटाओ। **यथाप्राप्त में संतोष और ईश्वरप्राप्ति की इच्छा यह परम कल्याण का मार्ग है।** जैसे आकाश प्रत्येक स्थान पर है, ऐसे ही ईश्वर सर्वत्र है. उसकी अपार शक्ति हर जगह भरपूर है। आवश्यकता है ऐसी दृष्टि की जो उसे पहचान सके। संत नामदेव ने कुत्ते में भगवान का दर्शन किया। उसे घी और रोटी खिलायी। चित्त की सब इच्छाएँ भगवान को अर्पित कर दो। जब घोड़े पर सवार हो गये तो फिर इच्छारूपी बोझा अपने सिर पर क्यों रहने देते हो ? निर्वासनिक होकर सत्कर्म करो। ऐसा करने पर परमात्मा स्वयं तुम्हारे पास दौड़ता हुआ आयेगा।

प्रतिदिन रात को सोने से पहले और सुबह उठते ही भगवान से प्रार्थना करो। भगवन्नाम का जप करो। जो भगवान से प्रेम करता है, उसके लिए भगवान भी कष्ट सहन करते हैं। जिसकी भगवान में प्रीति है वह उनके उस धाम में पहुँचेगा, जहाँ पहुँचने पर फिर से जन्म-मृत्यु के महादुःख को नहीं सहना पड़ता।

भगवान का स्मरण करते हुए प्रतिदिन अपने व्यवहार में सुधार, पवित्रता और विवेक को बढ़ाओ। आहार, निद्रा, भोग आदि में मनुष्य और पशु में समानता है। उन्हें संयोग और वियोग पर होने वाले सुख-दुःख की अवस्था भी दोनों में है। फिर भी मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है, ऐसा क्यों ? क्योंकि उसमें एक ऐसी विशेष शक्ति है जो किसी भी दूसरे प्राणी में नहीं है। वह है विवेकशक्ति। इसके प्रभाव से मनुष्य यह जान सकता है कि सत्य क्या है ? मैं कौन हूँ ? ....परंतु यदि मनुष्य इस विवेकशक्ति का आदर नहीं करता और भोगों में ही अपने जीवन को समाप्त कर देता है तो फिर उसमें और पशु पक्षियों में कोई विशेष अंतर नहीं है। उसकी शारीरिक रचना भले भिन्न हो फिर भी वह पशु ही है।

जिसके पास विवेक नहीं है वह कभी भी पूर्ण सफल और सुखी नहीं हो सकता। सत्-असत् को पहचान कर सत् को अपनाओ। मैं देह हूँ.... संसार की वस्तुएँ मेरी हैं....यह विचार असत् है।

इस मिथ्या अभिमान से सत् में स्थिति नहीं होगी। कैसी भी चिंता न करो क्योंकि चिंता चिता से बढ़कर है। चिता तो मुर्दे को जलाती है परंतु चिंता जीवित मनुष्य को ही भस्म कर देती है।

भगवान का नाम जपने से मंगल होता है क्योंकि भगवान मंगलस्वरूप हैं। जैसी प्रीति संसार के नश्वर पदार्थों में रखते हो, ऐसी यदि शाश्वत परमात्मा में रखोगे तो संसारसागर को सुगमता से पार कर लोगे। गृहस्थाश्रम में नीति व मर्यादा के मार्ग पर चलने से सुख प्राप्त होता है।

साधक को चाहिए कि वह अपने विवेक का आधार लेकर यह बात समझे कि उसे मनुष्य शरीर क्यों मिला है और उसका सदुपयोग कैसे किया जाय ? यदि विवेक को आगे रखकर संसार में रहोगे तो संसार में जो सार वस्तु है उस परमानंदस्वरूप परमात्मा को, वास्तविक सुख को पाने में सफल हो जाओगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीवन का अत्यावश्यक काम

निष्काम कर्म करने से हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध हृदय से आत्मा का ज्ञान होता है। भलाई के काम खूब करते रहो। किसी स्वार्थ से जो सेवा की जाती है, वह उत्तम सेवा नहीं होती। भले ही कोई कितना भी दिखावा करके अपने को निष्कामी साबित करे परंतु ईश्वर सब देखता है, वह सबको यथायोग्य फल देता है। आम बोओगे तो आम मिलेंगे।

इस संसार में रोते हुए आये हो परंतु अब कुछ ऐसा सत्कर्म करो कि भगवान के धाम को हँसते हुए जा सको। दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारा भी भला होगा। भलाई करने के लिए सबके प्रति प्रेम पैदा करो। शुद्ध प्रेम से वर्षों का वैर विरोध भी नष्ट हो जाता है। प्रभु भी प्रेम से ही प्रकट होते हैं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम में प्रगट होहिं मैं जाना।।

(श्रीरामचरित. बा. का. 148.3)

यदि नरक में जाना हो तो बुरे कर्म और बुरे संकल्प करो और यदि मुक्ति पानी हो तो निष्काम भाव से सत्कर्म करो तथा संतों का संग करो। हम अन्य सभी प्रकार की बातें सोचते हैं परंतु आत्मकल्याण के बारे में नहीं सोचते। अन्य काम कर रहे हो परंतु अपने अत्यावश्यक कामों में यह भी लिख लोः **हमें इस जन्म-मरण के चक्र से छूटना है।**

विचार एक बीज है जो भविष्य में एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित होगा। आज का विचार और पुरूषार्थ ही कल का प्रारब्ध है। इसलिए विचारशक्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विचारों को पवित्र रखना चाहिए।

विद्या किसको कहते हो ? विद्या का मतलब यह नहीं कि बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त कर लीं और उनका दुरूपयोग करने लगे। वह विद्या किस काम की जो जीवन की वास्तविकता को, मनुष्य जीवन के लक्ष्य को न बता सके। विद्या का अर्थ है वह प्रकाश जिससे हमें धर्म-अधर्म तथा सत्य-असत्य का पता लगे, जिसको जीवन में उतारने से हमें सत्य की ओर चलने की प्रेरणा मिले और सच्चा सुख प्राप्त हो।

यदि सच्चा सुख चाहते हो तो निष्काम कर्म और सत्संग द्वारा अपने अंतःकरण को शुद्ध करो। भलाई के काम करने से बुराई स्वतः ही छूट जायेगी। ऊँचा संग करने से कुसंग अपने आप छूट जायगा। जो मन बुराई की ओर जाता है, वह अच्छाई की ओर भी जा सकता है। नौका पानी के प्रवाह की ओर चलती है परंतु बलवान नाविक उसे पतवार के द्वारा दूसरी ओर भी मोड़ लेता है। इसी प्रकार उलटे मार्ग पर जाने वाले मन को पुरूषार्थ करके सन्मार्ग पर भी लाया जा सकता है।

सदा अंतर्मुख होकर रहो। अंतर्मुख होने से हृदय में जो वास्तविक आनंद है उसकी झलकें मिलती हैं। मनुष्य जन्म का उद्देश्य उसी आनंद को प्राप्त करना है। जिसने मनुष्य शरीर पाकर भी उसका अनुभव नहीं किया, उसका सब किया-कराया व्यर्थ हो जाता है।

प्यारे ! ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। हृदय में परमात्मा का आनंद भरा हुआ है। वृत्ति को जरा अंतर्मुख करके उसका स्वाद चखकर तो देखो।

बुरे कर्मों और संकल्पों से बचो। गुलाब के फूल की तरह सदैव खिले रहो। स्वार्थरहित होकर सत्कर्म करो। इस प्रकार निष्काम सेवा करने से भगवान के प्रति निष्काम प्रेम प्रकट होता है और जिसे यह दुर्लभ वस्तु मिलती है वह संसारचक्र से मुक्त हो जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वेदान्त का सार ब्रह्मज्ञान के सत्संग में

वैराग्य क्या है ? संसार के किसी भी पदार्थ में सत्यबुद्धि न रहे, मन में कोई भी वासना न रहे। जैसे, लहरों के आधार जल को, भूषणों के आधार स्वर्ण को तथा घड़े के आधार मिट्टी को विवेकदृष्टि से देखने पर इन वस्तुओं के आकार में सत्यता नहीं दिखती, उसी प्रकार इस जगत के नाम-रूप को छोड़कर इसके आधार आनंदस्वरूप परमात्मा को देखोगे तो संसार में सत्यबुद्धि नहीं होगी और अपने वास्तविक स्वरूप में विश्रांति मिलेगी।

जैसे जब कोई विद्यार्थी किसी कठिन प्रश्न को हल करते समय स्याही, कलम और स्वयं को भूल जाता है, वैसे ही जब जिज्ञासु परमात्मा को जानने का प्रयत्न करता है तो उसे भी अपने

अस्तित्व को ईश्वर में विलीन करना होता है। शरीर तथा संसार को भूल जाना पड़ता है तब परमात्मशांति, पूर्ण सुख मिलता है।

ऐसा विवेक मिलता है सत्संग से। सत्संग क्या है ? जिन्होंने सत्यस्वरूप परमात्मा को अपने मैं रूप में अनुभव कर लिया है, उनका संग ही सत्संग है। यह भगवान की भक्ति का प्रथम अर्थात् सबसे बड़ा सोपान है। भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने कहाः **प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।**

सत् वस्तु (परमात्मा) को पाये हुए संतों का संग करना और उनसे सत्य के बारे में सुनना, चर्चा करना यह सत्संग है। आजकल सत्संग के नाम पर भाषण करने वाले तो बहुत हो गये हैं परंतु सत्पुरूष तो कोई विरले ही मिलते हैं।

अब आप पूछोगे कि 'बाबाजी ! गृहस्थी में रहकर भी उस आनंदस्वरूप भगवान को पाया जा सकता है ? हाँ। जैसे राजा जनक और अन्य ऋषियों ने गृहस्थी में रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया, उसी प्रकार आप भी पा सकते हो लेकिन उनके समान पवित्र, संयमी एवं विवेकपूर्ण जीवन जीना होगा।

महामुनि अष्टावक्र राजा जनक से कहते हैं- "हे राजन ! न जाग्रत-सृष्टि सत्य है, न स्वप्न-सृष्टि और न ही सुषुप्ति सत्य है परंतु इनको जो देखने वाला है, जो इनका अनुभव करता है वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा सत्य है।

जीवन भर वेदान्त की पुस्तक पढ़ने से भी जो नहीं मिलता, वह वेदान्त का सार, सत्संग की एक घड़ी से मिल जाता है।

संसार की वस्तुएँ आनंदरूप नहीं हैं अपितु सभी भोग-विलास दुःखों, कष्टों और रोगों का मूल है। जिससे भविष्य में दुःख, रोग और क्लेश बढ़ें उस भोग-विलासिता से पहले से ही दूर रहना चाहिए।

चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि उत्तम है। देवता भी इस योनि में जन्म लेने के लिए इच्छुक रहते हैं किंतु साधारण मनुष्य इसका आदर नहीं करता। किसी विरले को ही अपनी मानव देह की कद्र होती है। यदि अभी भी आँख नहीं खुली तो फिर कहीं भी बचने का अवसर नहीं मिलेगा।

रज्जब एक श्वास का, तीन लोक नहिं मोल।
वृथा क्यों गँवाइये, ऐसी श्वास अनमोल।।

मन पर संयम रखकर निर्लिप्त भाव से संसार में विचरना चाहिए। नाम-रूप सब मिथ्या है। इसके बाद जो शेष रहता है वही आपका सच्चा स्वरूप है। आप सदा विद्यमान, अखण्ड, परिपूर्ण, शुद्ध, पवित्र, सच्चिदानंदस्वरूप हो। सदा इसी ज्ञान, ध्यान और आनंद में स्थित रहो। फिर नित्य आराम ही आराम रहेगा।

आप शरीर नहीं हो। इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य कर रही हैं। आप तो इन सभी को देखने वाली, जाननेवाली साक्षी सत्ता हो। हे प्रिय ! आप बहुत खेल खेल चुके हो। लीलाएँ बहुत हो चुकी। अब तो अपने स्वरूप को जानकर अजर-अमर हो जाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सभी शास्त्रों का सार.............

सदगुरू आपसे कह रहे हैं कि आप स्वयं को जो शरीर समझ रहे हो, वास्तव में आप वह नहीं हो। आप मरने वाले शरीर नहीं अपितु अमर आत्मा हो।

शरीर न सत् है, न सुन्दर है और न प्रेमरूप है। यह तो हड्डी-मांस, रूधिर और वात-पित्त-कफ से बना हुआ एक जड़ ढाँचा है। यह शरीर पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी भी नहीं (मृत्यु) की तरफ जा रहा है। परंतु आप तो पहले भी थे, अभी भी हो और बाद में भी रहोगे। अपने को सदैव सच्चिदानंदस्वरूप मानो।

शरीर और इन्द्रियों से व्यवहार करते हुए भी यदि स्वयं को सबका साक्षी, दृष्टा मानोगे तो बेड़ा पार हो जायगा। वास्तव में आप दृष्टा ही हो। आपकी सत्ता से ही वृत्ति पदार्थों का ज्ञान कराती है। सब कुछ आपकी सत्ता से ही बना है। मैं आपको आत्मज्ञान की ऊँची बातें बता रहा हूँ। ये बातें केवल बुद्धि में बैठ जायें तो बस..... आनंद हो जायेगा, जीवन्मुक्ति मिल जायेगी। लेकिन ये बातें इतनी आसानी से समझ में भी नहीं आतीं, मुझे भी नहीं आ रही थीं। जब संतों के संग में रहकर सत्शास्त्रों को विचारा तो भेद खुल गया, वास्तविकता का पता लग गया।

अतः आपसे भी यही कहता हूँ कि सच्चे संतों के संग में रहकर सत्शास्त्रों का अध्ययन करते रहो, तभी सत्य का रहस्य समझ में आयेगा। मुमुक्षु को सदैव एक ही इच्छा रखनी चाहिए कि मैं अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करूँगा। आपके भीतर आनंद की धारा बह रही है। उसमें स्नान करो, उसी में डूबे रहो तो संसार आपको नहीं डुबा सकेगा।

एक आत्मज्योति से ही यह जगत प्रकाशमान हो रहा है। एक आनंदस्वरूप आत्मा की सत्ता से ही इस संसार में भी आनंद की कुछ झलकें दिखायी देती हैं। आप वही ज्योति हो, वही आनंदस्वरूप हो। बाकी जो कुछ दिख रहा है वह सपने के समान मिथ्या है। वास्तव में जगत बना ही नहीं। अब आप कहोगेः 'स्वामी जी ! हमको तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।' तो भैया ! स्वप्न में भी तो आपको सभी पदार्थों का प्रत्यक्ष अनुभव प्रतीत होता है। परंतु जब जागते हो तो कहते हो कि अरे ! वह सब तो झूठा था, मिथ्या था जिसे हम स्वप्न में सच्चा मान रहे थे। देखो, जागने से पता लग गया न कि सब कुछ कल्पित व मिथ्या था।

इसी प्रकार जब आप अपने-आप में जागोगे तब जानोगे कि जिस संसार को सत्य समझकर इतने दुःखी, परेशान थे वह संसार स्वप्न की तरह मिथ्या है। इसी का नाम है जीवन्मुक्ति। जिसने स्वयं को पहचाना, उसने प्रभु को पहचान लिया।

मनुष्य इतना पसारा इसीलिए करता है क्योंकि उसे अपनी आत्मा का पूर्ण ज्ञान नहीं है। जब स्वयं को जानेगा तब पता लगेगा कि 'इतने समय तक मैं जो यत्न कर रहा था, वे सभी व्यर्थ थे।' अतः संसार के व्यापारों को महत्त्व न देकर सत्यस्वरूप आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे, एक दुकानदार के लिए दिनभर के सभी कार्यों में दुकान खोलना मुख्य कार्य होता है, ऐसे ही आत्मज्ञान को प्राप्त करना अपने जीवन का मुख्य कार्य बना लो।

आत्मा सत् और जगत मिथ्या है - यही सब ग्रंथों एवं सभी साधनाओं का सार है। मन को आत्मा में शांत करने का प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा को जानने के बाद कोई इच्छा नहीं बचती। उसे जानने वाला आत्मस्वरूप हो जाता है, आनंदस्वरूप हो जाता है। उसके लिए समस्त विश्व अपना ही रूप हो जाता है। संसार मेला है, स्वप्न है। आप एक ही सत्य हो। जो कुछ देख रहे हो वह स्वप्न है। आप सबके द्रष्टा हो। शरीर, इन्द्रियाँ और न उनके दुःख-सुख, इन सबसे परे हो। जब तक शरीर है तब तक परिस्थितियों और दुःख-सुख आते रहेंगे परंतु न दुःख सदा रहेगा और न सुख।

हम अपने को स्वप्न में भुला बैठे हैं। जब जागेंगे तब पता चलेगा कि हम इसके दर्शकमात्र थे। संसार में आसक्त व्यक्ति संसार के पदार्थों से जैसी प्रीति करता है, ऐसी ही प्रीति आप आत्मा-परमात्मा से करो और इसी जन्म में जीवन्मुक्त हो जाओ..... आनंदमय हो जाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संसार की चीजें बेवफा हैं

संसार मुसाफिरखाना है। इसकी वस्तुएँ अपनी नहीं हैं। यह देह पाँच तत्त्वों से बनी हुई है। यह है तो किराये की वस्तु परंतु जीव इसे अपनी देह समझ बैठता है। वास्तव में न हम देह हैं और न देह हमारी है।

देह तथा संसार में 'मैं-मेरे' की भावना नहीं करनी चाहिए। स्वयं को संसार तथा शरीर से पृथक इनका द्रष्टा-साक्षी मानना चाहिए। शरीर को अपने से पृथक जानोगे तो अखण्ड आनंद प्राप्त करोगे। जैसे ब्रह्मा-विष्णु को आनंद आता है, वैसी ही स्थिति हो जायेगी। भगवान को खूब याद करो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध के आकर्षण से बचना चाहिए तथा यथासम्भव मोह-ममतारहित होकर संसार की वस्तुओं से काम लेना चाहिए। संसार को अनित्य जानकर उससे किनारा करते रहो। संसार एवं शरीर जड़ हैं। वे न अपने को पहचान सकते हैं, न दूसरे को।

आपका घर, दुकान, गाड़ी, कपड़े, गहने आपको नहीं पहचान सकते हैं। जो भी उनका उपयोग करेगा, वे उसी के हो जायेंगे। शरीर की भी अपनी सत्ता नहीं है, यदि होती तो मरने के बाद भी व्यवहार करता। इस जड़ शरीर एवं संसार में भी चेतनता एवं ज्ञान की जो झलक मिलती है, वह चेतन तथा ज्ञानस्वरूप चैतन्य परमात्मा की ही है। यह सब उसी की सत्ता से चल रहा है।

एक सेठ के हाथ में एक गुलदस्ता था। उसने उसे एक संत को दे दिया। संत गुलदस्ता देखने लगे। उसमें प्रत्येक फूल को देखकर वे प्रसन्न हुए और उसकी सुगन्ध की प्रशंसा करने लगे। सेठ सोचने लगा कि 'महाराज तो गुलदस्ते में ही मग्न हो गये, देने वाले की ओर देखते तक नहीं।' बड़ी देर हुई तो सेठ से रहा नहीं गया। उसने कहाः "स्वामी जी ! जरा मेरी ओर भी देखिये। मुझे आपसे कुछ जानना है।"

सेठ की बात सुनकर संत ने गुलदस्ता रख दिया और बोलेः "सेठ जी ! यह तो मैं दृष्टांत दे रहा था। सेठों का भी सेठ परमात्मा है और ये सांसारिक पदार्थ हैं गुलदस्ते के फूल जो उसी ने हमें दिये हैं किंतु हम इनमें इतने लीन हो गये कि उस दाता की याद ही नहीं आती।"

जैसे स्वप्न की सृष्टि एक काल्पनिक बगीचा है, उसी प्रकार यह जाग्रत जगत भी मन की कल्पना ही है। सपने की सृष्टि उस समय सत्य लगती है परंतु जागने पर कुछ भी नहीं रहता, वैसे ही आत्मा का ज्ञान होने पर जाग्रत जगत भी स्वप्नवत् हो जाता है।

संसार में जो कुछ भी सौन्दर्य एवं आनंद दिखायी पड़ती है, उसका कारण अज्ञान है। शरीर और संसार के पदार्थ नाशवान हैं। एक आत्मा ही सत्, चित्त और आनंदस्वरूप है। जब आप आम खाते हो तो आपको वह मीठा लगता है और समझते हो कि उससे आनंद मिल रहा है। यह नासमझी है, अज्ञान है। आनंद आम से नहीं मिल रहा अपितु आम खाते समय उसके स्वाद में मन स्थिर हो गया, चित्तवृत्तियाँ थोड़ी शांत अथवा कम हो गयीं तभी वहाँ से आनंद मिला अर्थात् आनंद मिला मन के स्थिर होने से। परंतु यह स्थिरता क्षणिक है। थोड़ी देर बाद फिर से खटपट शुरू हो जायेगी और आम खाने की तृष्णा भी बढ़ जायेगी, मन आपको आम का गुलाम बना देगा। किंतु जब आत्मरस मिलता है, भगवद् भक्ति तथा भगवद् ज्ञान का अखूट आनंद मिलता है तब मन उसमें स्थिर ही अपितु लीन भी हो जाता है। जब मन थोड़ी देर के लिए आम में स्थिर हुआ तो इतना आनंद मिला, यदि उस सच्चिदानंद में ही लीन हो जाय तो वह आनंद कैसा होगा ! उसका तो वाणी वर्णन ही नहीं कर सकती। उसको हम पूरी तरह से शब्दों के द्वारा नहीं समझा सकते। उसको तो अनुभव के द्वारा ही जान सकते हैं और उसका अनुभव होता है साधना, विवेक तथा वैराग्य द्वारा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अभिभावकों के लिए

बालक सुधरे तो जग सुधरा। बालक-बालिकाएँ घर, समाज व देश की धरोहर हैं। इसलिए बचपन से ही उनके जीवन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि बचपन से ही उनके रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, शिष्टता और सदाचार पर सूक्ष्म दृष्टि से ध्यान दिया जाय तो उनका जीवन महान हो जायगा, इसमें कोई संशय नहीं है। लोग यह नहीं समझते कि आज के बालक कल के नागरिक हैं। बालक खराब अर्थात् समाज और देश का भविष्य खराब।

बालकों को नन्हीं उम्र से ही उत्तम संस्कार देने चाहिए। उन्हें स्वच्छताप्रेमी बनाना चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठना, बड़ों की तथा दीन-दुःखियों की सेवा करना, भगवान का नामजप एवं ध्यान-प्रार्थना करना आदि उत्तम गुण बचपन से ही उनमें भरने चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त में उठने से आयु, बुद्धि, बल एवं आरोग्यता बढ़ती है। उन्हें सिखाना चाहिए कि खाना चबा-चबाकर खायें। समझदारों का कहना है कि प्रत्येक ग्रास को 32 बार चबाकर ही खायें तो अति उत्तम है।

उनके चरित्र-निर्माण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ-कुछ गया परंतु चरित्र गया तो सब कुछ गया। यह चरित्र ही है जिससे दो पैरवाला प्राणी मनुष्य कहलाता है। सिनेमा के कारण बालकों का चरित्र बिगड़ रहा है। यदि इसकी जगह पर उन्हे ऊँची शिक्षा मिले तो रामराज्य हो जाय। प्राचीन काल में बचपन से ही धार्मिक शिक्षाएँ दी जाती थीं। माता जीजाबाई ने शिवाजी को बचपन से ही उत्तम संस्कार दिये थे, इसीलिए तो आज भी वे सम्मानित किये जा रहे हैं।

रानी मदलसा अपने बच्चों को त्याग और ब्रह्मज्ञान की लोरियाँ सुनाती थीं। जबकि आजकल की अधिकांश माताएँ तो बच्चों को चोर, डाकू और भूत की बातें सुनाकर डराती रहती है। वे बालकों को डाँटकर कहती हैं- 'सो जा नहीं तो बाबा उठाकर ले जायेगा.... चुप हो जा नहीं तो पागल बुढ़िया को दे दूँगी।' बचपन से ही उनमें भय के गलत संस्कार भर देती हैं। ऐसे बच्चे बड़े होकर कायर और डरपोक नहीं तो और क्या होंगे ? माता-पिता को चाहिए कि बच्चों के सामने कभी बुरे वचन न बोलें। उनसे कभी विवाद की बातें न करें।

बच्चों को सुबह-शाम प्रार्थना-वंदना, जप-ध्यान आदि सिखाना चाहिए। उनके भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्हें शुद्ध, सात्त्विक और पौष्टिक आहार देना चाहिए तथा लाल-मिर्च, तेज मसालेदार भोजन एवं बाजारू हलकी चीजें नहीं खिलानी चाहिए। आजकल लोग बच्चों को चाट-पकौड़े खिलाकर उन्हें चटोरा बना देते हैं।

उन्हें समझाना चाहिए कि सत्संग तारता है और कुसंग डुबाता है। समय के सदुपयोग, सत्शास्त्रों के अध्ययन और संयम-ब्रह्मचर्य की महिमा उन्हें समझानी चाहिए। मधुर भाषण, बड़ों का आदर, आज्ञापालन, परोपकार, सत्यभाषण एवं सदाचार आदि दैवी संपदावाले सदगुण उनमें प्रयत्नतः विकसित करने चाहिए।

अध्यापकों को भी विद्यालय में उनका सूक्ष्म दृष्टि से ध्यान रखना चाहिए। अध्यापक के जीवन का भी विद्यार्थियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। शिक्षक ऐसा न समझें कि पुस्तकों में लिखी पेटपालू शिक्षा देकर हमने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया। लौकिक विद्या के साथ-साथ उन्हें चरित्र-निर्माण की, आदर्श मानव बनने की शिक्षा भी दीजिये। आपकी इस सेवा से यदि भारत का भविष्य उज्जवल बनता है तो आपके द्वारा सुसंस्कारी बालक बनाने की राष्ट्रसेवा, मानवसेवा हो जायेगी।

विद्यालय में अच्छे बच्चों के साथ कुछ उद्दण्ड एवं उच्छृंखल बच्चे भी आते हैं। उन पर यदि अंकुश नहीं लगाया गया तो अच्छे बच्चे भी उनके कुसंग में आकर बिगड़ जाते है। याद रखिये 'एक सड़ा हुआ आम पूरे टोकरे के आमों को खराब कर देता है।' इसलिए ऐसे बच्चों को सुसंस्कारवान बनाना चाहिए। बालक तो गीली मिट्टी जैसे होते हैं। शिक्षक एवं माता पिता उन्हें जैसा बनाना चाहें बना सकते हैं।

बालक इंजिन के समान है तथा माता पिता एवं गुरूजन ड्राइवर जैसे हैं। अतः उन्हें ध्यान रखना चाहे कि बालक कैसा संग करता है ? प्रातः जल्दी उठता है कि देर ? कहीं वह समय व्यर्थ तो नहीं गँवाता ? उन्हें बच्चों की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक उन्नति का भी ध्यान रखना चाहिए। कई माता पिता अपने बच्चों को उल्टी सीधी कहानियो की पुस्तकें देते हैं, जिनसे बच्चों के मन, बुद्धि चंचल हो जाते हैं। उनका यह शौक उन्हें आगे चलकर गंदे उपन्यास एवं फिल्मी पत्रिकाएँ पढ़ने का आदी बना देता है और उनका चरित्र गिरा देता है।

इसलिए बच्चों को सदैव सत्संग की पुस्तकें गीता, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थ पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इससे उनके जीवन में दैवी गुणों का उदय होगा। उन्हें ध्रुव, प्रह्लाद, मीराबाई आदि की इस प्रकार कथा-कहानियाँ सुनानी चाहिए, जिनसे वे भी अपने जीवन को महान बनाकर सदा के लिए अमर हो जायें।

अंत में बालकों से मुझे यही कहना है कि माता, पिता एवं गुरूजनों की सेवा करते रहें, यही उत्तम धर्म है। गरीब एवं दीन दुःखियों को सँभालते रहें तथा ईश्वर को सदैव याद रखें जिसने हम सभी को बनाया है, भले कर्म करने की योग्यताएँ दी हैं। उसे स्मरण करने से सच्ची समृद्धि की प्राप्ति होगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बिनु सत्संग विवेक न होई......

जीवन में इन तीन बातों का होना अनिवार्य हैः सत्संग, भगवद् भजन और परोपकार। इनमें भी सत्संग की बड़ी भारी महिमा है। सत्संग का अर्थ है, सत् वस्तु का ज्ञान।

परमात्मा की प्राप्ति और प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न करने तथा बढ़ाने के लिए सत्पुरूषों को श्रद्धा एवं प्रेम से सुनना - यही सत्संग है। जीव की उन्नति सत्संग से ही होती है. सत्संग से उसक स्वभाव परिवर्तित हो जाता है। सत्संग उसे नया जन्म देता है। जैसे, कचरे में चल रही चींटी यदि गुलाब के फूल तक पहुँच जाय तो वह देवताओं के मुकुट तक भी पहुँच जाती है। ऐसे ही महापुरूषों के संग से नीच व्यक्ति भी उत्तम गति को पा लेता है।

तुलसीदास जी ने कहा हैः

जाहि बड़ाई चाहिए, तजे न उत्तम साथ।
ज्यों पलास संग पान के, पहुँचे राजा हाथ।।

जैसे, पलाश के फूल में सुगंध नहीं होने से उसे कोई पूछता नही है, परंतु वह भी जब पान का संग करता है तो राजा के हाथ तक भी पहुँच जाता है। इसी प्रकार जो उन्नति करना चाहता हो उसे महापुरूषों का संग करना चाहिए।

परमात्मा की प्राप्ति और प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न करने एवं बढ़ाने के लिए साधु पुरूष का संग करना और उनके उपदेशों को श्रद्धा व प्रेम से सुनकर तदनुसार आचरण करना, यह सत्संग है। जैसा संग, वैसा रंग। संग से ही मनुष्य की पहचान की जाती है। अतः अपनी उन्नति एवं वास्तविक सुख की प्राप्ति के लिए सदैव सत्संग करना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। मन शुद्ध कैसे होता है ? मन शुद्ध होता है विवेक से और विवेक कहाँ से मिलता है ?

बिनु सत्संग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और भगवान की कृपा के बिना सच्चे संत नहीं मिलते। तोते की तरह रट-रटकर बोलने वाले तो बहुत मिलते हैं, परंतु उस 'सत्' तत्त्व का अनुभव करने वाले महापुरूष विरले ही मिलते हैं। आत्मज्ञान को पाने के लिए रामकृपा, सत्संग और सदगुरू की कृपा आवश्यक है। ये तीनों मिल जायें तो हो गया बेड़ा पार।

निष्काम कर्म और उपासना से अंतःकरण शुद्ध होता है और रामकृपा मिलती है। सदगुरू के उपदेश को जीवन में उतारने से उनकी कृपा पचती है। संत-महात्माओं की बिना किसी स्वार्थ के, सच्चे प्रेम से सेवा करनी चाहिए। यदि वे स्वयं प्रसन्न होकर कहें कि कुछ माँगो, तो भी यही माँगना कि 'मुझे वही शाश्वत धन दीजिए जो आपने पाया है। मुझे अपने साथ मिला दीजिए।'

संसार की नश्वर चीजों की इच्छा रखोगे तो सदा दुःखी रहना पड़ेगा, अत्यधिक दुःख भोगना पड़ेगा। इच्छा करनी है तो आत्मस्वभाव को जानने की, भगवान से एक होने की करो।

इच्छा करो, प्रबल इच्छा करो लेकिन संसार को पाने की नहीं अपितु सच्चा आनंद पाने की, मुक्ति पाने की....। उद्यम करो, खूब उद्यम करो अपने असली घर में पहुँचने के लिए जहाँ पहुँचने के बाद फिर इस दुःखरूप संसार में वापस नहीं आना पड़ता।

संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।

कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कटक जहाँ।।

शरीर को मैं और संसार की चीजों को मेरा मानकर यह जीव दुःख की चोटें खाता रहता है। हे वत्स ! यह शरीर तू नहीं है। शरीर पंचतत्त्वों का मिटने वाला पुतला है। संसार माया है। माया अर्थात् जो हो नहीं और दिखे। जैसे, मरूस्थल में नदी। एक आत्मा ही सत्य है और तू वही है। तू अमर है, अमृतपुत्र है भैया ! अपने को जान ले और सुखी हो जा, अमर हो जा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जन्म-मरण का मूलः तृष्णा

शुद्ध बुद्धि न होने के कारण ही मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में डूबा रहता है। यह तृष्णा ही है जो जीव को जन्म मरण के चक्र में भटकाती है। तृष्णा ऐसी चीज है जो कभी तृप्त नहीं होती। चाहे इसमें कितनी आहूतियाँ डालो तो भी इसका पेट नहीं भरता। जब तक अंतःकरण में आशा और तृष्णा है तब तक आत्मज्ञान नहीं होगा। जो चीजें नहीं मिलती उनको प्राप्त करने की इच्छा का नाम आशा है और उन आशाओं को बढ़ाने का नाम तृष्णा है। आशा डायन है, धूर्त है। तृष्णा पैदा होने से प्रमाद और पाप आकर उसका साथ देते हैं, फिर तो मनुष्य अपने होश गँवा बैठता है और अंधा बनकर मन के पीछे भागता है। फिर जिस तरह अँधा हाथी किसी गहरे गड्ढे में जाकर गिरता है उसी तरह मनुष्य पतन के गर्त में गिर जाता है। जहाँ से उसका निकलना कठिन हो जाता है। एक बार यदि जिज्ञासु तृष्णाओं में फिसल गया तो सीधा वासनाओं के कीचड़ में जा गिरेगा। इन्द्रियों की आवश्यकताएँ और इच्छाएँ बढ़ाने से बढ़ती हैं और कम करने से कम होती हैं। तृष्णाओं और आवश्कताओं की दुनिया में रहते हुए भी जिज्ञासु साधना और तपस्या से अन्य आवश्यकताओं के समान विषय वासना को वश में रख सकता है। तृष्णाएँ उत्पन्न न हों, यह तो योगी का काम है, किंतु उनमें बह न जायें, यह तो प्रत्येक जिज्ञासु का कर्त्तव्य और धर्म है। तृष्णा के साथ चिंता भी आकर घेर लेती है। तृष्णावाले के हृदय में दुःखरूपी दानव भी आकर घर बनाता है। जगत के पदार्थों की तृष्णा मत करो। तृष्णा को संतोष से मिटाओ। यथा प्राप्त में संतोष और ईश्वरप्राप्ति की इच्छा यह परम कल्याण का मार्ग है। अतः आशा-तृष्णा को त्यागकर आत्मसुख में विश्रांति पाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्वतंत्रता माने उच्छ्रंखलता नहीं

जिज्ञासुः "स्वामी जी ! आजकल स्वतंत्रता के नाम पर बहुत कुछ नहीं होने जैसा भी हो रहा है। यदि किसी को कुछ समझायें तो वह यह कह देता है कि हम स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। अतः हम अपनी इच्छानुसार जी सकते हैं।"

स्वामी जीः "(गंभीर शब्दों में) ऐसे मूर्ख लोग स्वतंत्रता का अर्थ ही नहीं जानते। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। हमारा देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमको जैसा चाहें वैसा करने का अधिकार मिल गया है। सच्ची स्वतंत्रता तो यह है कि हम अपने मन-इन्द्रियों की गुलामी से छूट जायें। विषय-वासनाओं के वश में रहकर जैसा मन में आया वैसा कर लिया यह स्वतंत्रता नहीं बल्कि गुलामी है। मनमानी तो पशु भी कर लेता है फिर मनुष्यता कहाँ रही ?

भले ही कोई सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर ले, सभी शत्रुओं को मार डाले परंतु यदि वह अपने मन को वश नहीं कर सका, अपने भीतर छिपे विकाररूपी शत्रुओं को नहीं मार पाया तो उसकी दुर्गति होनी निश्चित है।

एक दिन तुम अपने कमरे में गये और अन्दर से ताला लगाकर चाबी अपने पास रख ली। दूसरे दिन तुम जैसे ही अपने कमरे में घुसे किसी ने बाहर से ताला लगा दिया और चाबी लेकर भाग गया। अब पहले दिन तुम कमरे में बंद रहकर भी स्वतंत्र थे क्योंकि कमरे से बाहर निकलना तुम्हारे हाथ में था। दूसरे दिन वही कमरा तुम्हारे लिए जेलखाना बन गया क्योंकि चाबी दूसरे के हाथ में है।

इसी प्रकार जब तुम अपने मन पर संयम रखते हो, माता-पिता, गुरूजनों एवं सत्शास्त्रों की आज्ञा में चलकर मन को वश में रखते हुए कार्य करते हो तब तुम स्वतंत्र हो। इसके विपरीत यदि मन कहे अनुसार चलते रहे तो तुम मन के गुलाम हुए। भले ही अपने को स्वतंत्र कहो परंतु हो महागुलाम....

विदेशों में बड़ी आजादी है। उठने बैठने, खाने-पीने अथवा कोई भी व्यवहार करने की खुली छूट है। माँ-बाप, पुत्र-पुत्री सब स्वतंत्र हैं। किसी का किसी पर भी कोई नियंत्रण नहीं है, किंतु ऐसी उच्छ्रंखलता से वहाँ के लोगों का कैसा विनाश हो रहा है, यह भी तो जरा सोचो। मान-मर्यादा, धर्म, चरित्र सब नष्ट हो रहे हैं वे मनुष्य होकर पशुओं से भी अधम हो चुके हैं, क्या तुम इसे आजादी कहते हो ? कदापि नहीं, यह आजादी नहीं महाविनाश है।

चौरासी लाख शरीरों में कष्ट भोगने के बाद यह मानव-शरीर मिलता है परंतु मूढ़ मतिवाले लोग इस दुर्लभ शरीर में भी पशुओं जैसे ही कर्म करते हैं। ऐसे लोगों को आगे चलकर बहुत रोना पड़ता है।

तुलसीदास जी कहते हैं-

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि पछितइ।

अतः मेरे भैया ! स्वतंत्रता का अर्थ उच्छ्रृंखलता नहीं है। शहीदों ने खून की होली खेलकर आप लोगों को इसलिए आजादी दिलायी है कि आप बिना किसी कष्ट के अपना, समाज का तथा देश का कल्याण कर सकें। **स्वतंत्रता का सदुपयोग करो तभी तुम तथा तुम्हारा देश स्वतंत्र रह पायेगा, अन्यथा मनमुखता के कारण अपने ओजस्तेज को नष्ट करने वालों को कोई भी अपना गुलाम बना सकता है।**

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अविद्या का पर्दा हटा कर देखें !

जब तक मनुष्य नाना प्रकार के भोगों में खुले रूप से विचरता रहेगा, आशाओं-शंकाओं को बढ़ाता रहेगा, तब तक आत्मध्यान, आत्मज्ञान और आत्मानंद में स्थिरता नहीं होगी। जब तक सांसारिक पदार्थों से विरक्ति नहीं होगी और उनमें दृढ़ प्रीति रहेगी, तब तक सत्य की ओर झुकाव नहीं हो सकता। आसुरी पदार्थों में हमारी आसक्ति इसलिए होती है कि उनमें हमें सुख भासता है और ऐसा अविद्या के कारण होता है। अगर विचार करके देखें तो संसार की कोई भी वस्तु सुन्दर, आनंदप्रद, प्रेममय और सत्य नहीं है। शरीर को ही ले लीजिये। भले ही बिना विचार के इसमें सुन्दरता, सुख और आनंद सत्य से भासते हैं, परंतु विचार करके देखेंगे तो ये बातें इसमें (शरीर में) मिल नहीं सकतीं।

आप अपने को समझते हैं कि मैं देह हूँ अथवा यह देह मेरी है, पर यह बात झूठ है। यह देह तो पाँच तत्त्वों से बनी है, हाड़-मांस का पिंजरा है इसमें तो मल-मूत्र आदि गंदगी भरी हुई है। विचारपूर्वक देखो कि इसमें कैसी चीजें हैं ? नाक से गंदगी बहती है, मुख से थूक आदि निकल रहे हैं। शरीर को रोग कि स्थिति में अथवा वृद्धावस्था को देखकर कैसा प्रतीत होता है ? ताजी हवा जो रात दिन शरीर में प्रवेश करती है, जब वह शरीर से बाहर निकलती है तो हम देखें कि क्या बनकर निकलती है ? खाने पीने में जो भी अंदर जाता है वह भी देखें कि क्या बन कर बाहर निकलता है ? शरीर पर कोई फोड़ा-फुँसी हो जाय तो उसमें से क्या निकलता है ? इसी प्रकार मृत्यु के बाद इस शरीर को दो दिन रख दिया जाय तो उस शव के पास कोई खड़ा नहीं हो सकेगा। जो हाड़ मांसमय देह को चेतना दे रहा है, अपने उस परमेश्वर स्वभाव को पहचानो। उसी अन्तर्यामी ईश्वर में सुखी होने का सही रास्ता पा लो। हाड़-मांस के देह की आसक्ति मिटा लो।

चेष्टा नहीं जड़ता नहीं, नहिं आवरण नहिं तम जहाँ।
अव्यय अखण्डित ज्योति शाश्वत, जगमगाती सम जहाँ।।
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
कैसे तुझे फिर बन्ध हो, नहिं मूर्ति तू आभास की।।

आत्मध्यान से भ्रांति नष्ट होती है। आत्मज्ञान होने पर मन स्थिर हो जाता है, अज्ञान का पर्दा हट जाता है और अपने असली स्वरूप का, आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। जैसे, किसी कोठरी में वर्षों से अन्धेरा हो परंतु दीप जलाने से वह वर्षों का अंधकार क्षणभर में नष्ट हो जाता है, ऐसे ही आत्मज्ञान होने पर जन्मों-जन्मों का अज्ञान दूर हो जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग को आचरण में लायें

ब्रह्मवेत्ता संत के चरणों में बैठकर सत्संग सुनने वाला बड़ा भाग्यशाली होता है, परंतु सत्संग किसलिये सुनना है ? उसे आचरण में लाकर मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिए। आचरण के बिना विद्या लूली लँगड़ी है। ठीक ऐसे ही, जैसे केवट के बिना नाव।

एक संत ने अपने दो शिष्यों को दो डिब्बों में मूँग के दाने दिये और कहाः "ये मूँग हमारी अमानत हैं। ये सड़े गले नहीं बल्कि बढ़े-चढ़े यह ध्यान रखना। दो वर्ष बाद जब हम वापस आयेंगे तो इन्हें ले लेंगे।"

संत तो तीर्थयात्रा के लिए चले गये। इधर एक शिष्य ने मूँग के डिब्बे को पूजा के स्थान पर रखा और रोज उसकी पूजा करने लगा। दूसरे शिष्य ने मूँग के दानों को खेत में बो दिया। इस तरह दो साल में उसके पास बहुत मूँग जमा हो गये।

दो साल बाद संत वापस आये और पहले शिष्य से अमानत वापस माँगी तो वह अपने घर से डिब्बा उठा लाया और संत को थमाते हुए बोलाः "गुरूजी ! आपकी अमानत को मैंने अपने प्राणों की तरह सँभाला है। इसे पालने में झुलाया, आरती उतारी, पूजा-अर्चना की..."

संत बोलेः "अच्छा ! जरा देखूँ त सही कि अन्दर के माल का क्या हाल है ?"

संत ने ढक्कन खोलकर देखा तो मूँग में घुन लगे पड़े थे। आधे मूँग की तो वे चटनी बना गये, बाकी बचे-खुचे भी बेकार हो गये। संत ने शिष्य को मूँग दिखाते हुए कहाः "क्यों बेटा ! इन्ही घुनों की पूजा अर्चना करते रहे इतने समय तक !"

शिष्य बेचारा शर्म से सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। इतने में संत ने दूसरे शिष्य को बुलवाकर उससे कहाः "अब तुम भी हमारी अमानत लाओ।"

थोड़ी देर में दूसरा शिष्य मूँग लादकर आया और संत के सामने रखकर हाथ जोड़कर बोलाः "गुरूजी ! यह रही आपकी अमानत।"

संत बहुत प्रसन्न हुए और उसे आशीर्वाद देते हुए बोलेः "बेटा ! तुम्हारी परीक्षा के लिए मैंने यह सब किया था। मैं तुम्हें वर्षों से जो सत्संग सुना रहा हूँ, उसको यदि तुम आचरण में नहीं लाओगे, अनुभव में नहीं उतारोगे तो उसका भी हाल इस डिब्बे में पड़े मूँग जैसा हो जायेगा। यदि सुने हुए सत्संग का मनन करोगे, खुद गोता मारोगे और दूसरों को भी यह अमृत बाँटोगे तो उसका फल अनंत गुना मिलेगा।"

मिश्री-मिश्री रटने मात्र से मुँह मीठा नही हो जाता बल्कि उसके लिए धन कमाना पड़ता है, फिर दुकान से मिश्री खरीदकर उसे खाने से उसके स्वाद का अनुभव होता है। भले ही आपके सामने एक से बढ़कर एक व्यंजन रखे हों परंतु उन्हें खाये बिना आपकी भूख नहीं मिटेगी। ऐसे ही सत्संग से जो पवित्र ज्ञान सुना है उसे अपनाने से अपना जीवन बदलता है और इच्छित वस्तु की अर्थात् जिसके लिए सत्संग सुना उस परमात्मा की प्राप्ति होती है। सत्संग को जीवन में उतारने वाला पुरूषार्थी व्यक्ति ही सच्चा सत्संगी एवं संत-प्रेमी है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मन के द्रष्टा बनो

प्रत्येक प्राणी के कर्म का उद्देश्य है सभी दुःखों का नाश और सुख की प्राप्ति। हम जो भी प्रवृत्ति करते हैं सुख के लिए ही करते हैं। हमारा उद्देश्य तो अच्छा है परंतु प्रयत्न गलत है। सुख-दुःख हमारे मन की कल्पना है। उस कल्पना को जब हम किसी बाह्य परिस्थिति से जोड़ देते हैं तो समझते हैं कि अमुक परिस्थिति ने मुझे दुःख दिया अथवा सुख दिया।

इसी को अज्ञान कहते हैं। सुख-दुःख का मूल हमारे मन में है। जब ब्रह्मज्ञानी सदगुरू की कृपा से वह मूल पकड़ में आता है, तब असली सुख का पता लगता है।

सुख-दुःख, मान-अपमान आदि सब मन के द्वन्द्व हैं। जब तक मन के पार जाने की यात्रा नहीं की तब तक ये आते-जाते ही रहेंगे। तो फिर अभी से मन के पार पहुँचने की यात्रा आरंभ कर लो। जब मन सुखी-दुःखी हो तब तुम मन के साक्षी बनकर उसके क्रिया-कलापों को देखते रहो। उसी समय तुमको कुछ-कुछ एहसास होगा कि तुम मन से अलग हो। बस, इसी अभ्यास को बढ़ाते रहो। हर परिस्थिति का अनुभव मन करता है और तुम मन के भी द्रष्टा बन जाओ। परिस्थितियों से तथा उनके कारण मन में उत्पन्न क्षोभ से जुड़ना मत अपितु किनारे खड़े रहकर सारा खेल देखते रहना।

यदि यह अभ्यास पक्का हो गया तो सुख और दुःख के द्वन्द्वों से परे जो आत्मा का नित्य एवं शाश्वत आनंद है, वह मिलने लगेगा। इस आनंद का स्वाद एक बार चख लिया तो सुख और दुःख का धंधा ही बंद हो जाएगा।

जिस प्रकार वस्त्र शरीर से अलग है उसी प्रकार आत्मा शरीर एवं मन से अलग है। जिस प्रकार आकाश-तत्त्व शरीर में ओत-प्रोत होते हुए भी उससे न्यारा है, शरीर के मरने मिटने पर भी ज्यों का त्यों रहता है ऐसे ही चिदाकाशस्वरूप आत्मा परमात्मा सबमें ओत-प्रोत रहते हुए भी सबसे न्यारा है। सब उसी आत्मा से ऊर्जा लेकर कार्य करते हैं।

सर्दी-गर्मी शरीर के, भूख-प्यास प्राणों के, सुख-दुःख मन के एवं राग-द्वेष बुद्धि के विकार हैं परंतु इन सबको अनुभव करने की शक्ति जिससे मिलत है, वह अमर आत्मा तुम हो।

हे अमृतस्वरूप आत्मा ! बाहर के सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को सत्य मानकर उनमें ही कब तक उलझते रहोगे ? अब सुख दुःख से परे जो आत्मानंद है, उसे पाने की यात्रा कर लो और सुख-दुःख के झंझटों से सदा के लिए मुक्त हो जाओ। असली एवं अमिट सुख को पाने का यही एकमात्र उपाय है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महापुरूषों का सहारा लो

स्वयं को उन्नत करने के लिए अपने आत्मबल का सहारा लो। आत्मज्ञानी महापुरूष का सहारा मिल जाय तो सर्वश्रेष्ठ है और यह तो बड़े भाग्य से ही मिलता है। आप कहेंगे, उनका सहारा लेना भी तो पराधीनता है ! नहीं भाई.... यह सहारा, सहारा नहीं कहलाता। यह सहारा पराधीनता नहीं कहलाता। ब्रह्मज्ञानी सबको ब्रह्मस्वरूप समझते हैं। वे आपको दूसरा नहीं मानते बल्कि अपना ही स्वरूप मानते हैं। आप मन बुद्धि में विचरते हैं, वे मन-बुद्धि से ऊपर आत्मतत्त्व में रमते हैं। आप धोखा खा सकते हैं परंतु वे आपको धोखे से बचा सकते हैं। अतः संग करना हो तो ज्ञानी का करें। मार्गदर्शन लेना हो तो ज्ञानी महापुरूष से लें, अज्ञानी से नहीं। अज्ञानी आपको अज्ञान में ही उलझा सकता है क्योंकि उससे आगे उसकी पहुँच नहीं है। ज्ञानी महापुरूष ही हमें सही रास्ते पर चला सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निन्दा-स्तुति की उपेक्षा करें

जो भी भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ेगा, जो भी आत्म-साक्षात्कार के लिए साधना करेगा उसके मार्ग में कष्टों, विघ्नों का आना स्वाभाविक है।

कोई आपका अपमान करे, निंदा करे तो इससे आप क्यों विचलित होते हैं ? आप निन्दा-स्तुति को अनदेखा कर दें। अपमान या निन्दा घूम-फिर कर उसी के पास पहुँच जायेगी। आप किसी के भी अपमान या निन्दा के शब्दों पर ध्यान न दें। आप अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करें।

मीरा का कितना अपमान हुआ था। उसको मारने के लिए जहर दिया गया। सम्बन्धियों ने उसको सताने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। आखिर मीरा जब वहाँ से चली गयी वहाँ अकाल पड़ गया। ब्राह्मण व ज्योतिषियों से अकाल-निवारण का उपाय पूछा गया तो उन्होंने बतायाः "मीरा भक्त है। उसके यहाँ रहने से अकाल पड़ा है। उसको वापस बुला लो तो अकाल दूर हो जायगा।" राणा ने मीरा को बुलाने के लिए बुलावा भेजा। मीरा ने जवाब दियाः "मैं इधर ही अपने कन्हैया की भक्ति में खुश हूँ। मुझे कहीं आना-जाना नहीं है।" मीरा ने साफ मना कर दिया तो फिर बुलावा आया। जैसे तैसे करके मीरा को मनाया गया और वहाँ चलने के लिए राजी कर लिया। मीरा वापस लौटी तो अपमान करने वालों ने उससे माफी माँगी। आखिर उनको मीरा की ही शरण में आना पड़ा।

निन्दा और अपमान की परवाह न करें। निर्भय रहें। प्रसन्न रहें। अपने मार्ग पर आगे बढ़ते रहें। जो डरता है उसी को दुनिया डराती हैं। यदि आपमें डर नहीं है, आप निर्भय हैं तो काल भी आपका बाल बाँका नहीं कर सकता। जो आत्मदेव में श्रद्धा रखकर निर्भयता से व्यवहार करता है वह सफलतापूर्वक आगे बढ़ता जाता है। उसे कोई रोक नहीं सकता। वह अपनी मंजिल तय करके ही रहता है। उस चाह को ठुकरा दो जो आपको अशांत बनाती है, दीन बनाती है। उसे पैरों तले कुचल दो। दुःख के विचारों को स्थान मत दो। निर्बलता के विचारों को उखाड़ फेंको। अपने आत्मरूप में विश्रांति पाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

.....नहीं तो सिर धुन-धुनकर पछताना पड़ेगा

संसार के जिन-जिन पदार्थों, वस्तुओं आदि को हम अपना मान रहे हैं, वे हमारे नहीं हैं, उनसे हमारा वियोग अवश्यंभावी है। अतएव उनके संग्रह, संरक्षण में ईश्वर को भुला देना उचित नहीं। परमात्मा की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त सभी कर्म व्यर्थ अथवा अनर्थ हैं। यह मानव-जीवन परमात्मप्राप्ति के लिए ही मिला है, व्यर्थ के भोग भोगने के लिए

नहीं। स्वर्ग के भोगों के लिए प्रयत्नशील होना भी व्यर्थ है। **स्वर्गउ स्वल्प अंत दुःखदाई।** अतः परमात्मप्राप्ति में सहायक होने वाले कार्य के अतिरिक्त किसी भी कार्य में लगना मूर्खता है। आयु प्रतिक्षण व्यतीत हो रही है। इसलिए जिस कार्य के लिए हमें मनुष्य शरीर मिला है, उसे शीघ्र कर लेना चाहिए। काल का भरोसा नहीं है।

इस शरीर के सभी सम्बन्ध काल्पनिक और नाशवान हैं, ऐसा समझकर इन सम्बन्धों का त्याग हम मन से कर दें तो उत्तम हैं। विवेकपूर्वक हमने ऐसा कर लिया तो मुक्ति पथ पर अग्रसर हो जायेंगे और यदि विवश होकर इन सम्बन्धों को छोड़ना पड़ा तो हम भटकते फिरेंगे। जो जन्मा है उसे अवश्य मरना पड़ेगा। लाख प्रयत्न करने पर भी मृत्यु से छुटकारा नहीं हो सकता। जब इस शरीर को मरना ही है तो दो दिन पहले मरे या दो दिन बाद, इसकी क्या चिंता ? बस, जिस काम के लिए आये हैं, उसे अवश्य कर लेना चाहिए, नहीं तो आगे जाकर घोर पश्चाताप करना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

सो परत्र दुःख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।।

जो मनुष्य इस समय सचेत नहीं होता, उसको आगे चलकर सिर धुन-धुनकर घोर पश्चाताप करना पड़ेगा। वह मूर्ख उस समय काल और कर्म पर झूठा दोष लगायगा। वह यही कहेगाः "कलियुग के कारण मैं अपना उद्धार नहीं कर सका। मेरे कर्म ही ऐसे थे, मेरे भाग्य में ऐसी ही बात लिखी थी। ईश्वर ने मेरी सहायता नहीं की, अमुक ने ऐसा किया आदि आदि।" उसका यह रोना.... व्यर्थ है-मिथ्या है। अतएव अभी से सावधान हो जाना चाहिए। परमात्मा की प्राप्ति स्वयं अपने करने से ही होगी। कोई दूसरा हमारे लिए इस कार्य को नहीं कर सकेगा। संसार का कोई काम बाकी रह गया तो हमारे पीछे हमारे उत्तराधिकारी अथवा दूसरे लोग कर लेंगे, परंतु परमात्मा की प्राप्ति में यदि त्रुटि रह गयी तो हमको पुनः जन्म लेना पड़ेगा। अतः जो काम हमारे किये ही होगा और जिसको करना अनिवार्य है, उसी में समय लगाना चाहिए।

अतः भैया ! मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बार-बार नहीं मिलेगा। **'अबके बिछड़े कब मिलेंगे, जाय पड़ेंगे दूर।'** बड़े में बड़ा दुःख है जन्म-मृत्यु का और बड़े में बड़ा सुख है मुक्ति का। ऐ प्यारे ! आज ही शुद्ध संकल्प करो कि इसी जन्म में हम मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग-विचार ही जीवन का निर्माता

एक आवश्यक बात ध्यान में रखो। सत्संग तारता है और कुसंग डूबोता है। अच्छे संग से अच्छे संकल्प तथा कर्म होते हैं। मंथरा दासी के संग से कैकेयी के मन के संकल्प बिगड़े। यह

कुसंग का फल है। सत्संग से ही सत्य को समझा जा सकेगा। संतो तथा सत्शास्त्रों के वचनों को ग्रहण करना चाहिए।

यदि सुख चाहते हो, दुःखों की चोटों से बचना चाहते हो, जीवन्मुक्ति चाहते हो तो सत्संग करो। लोग कहते हैं कि 'जब बूढ़े होंगे तब सत्संग करेंगे' परंतु जब बूढ़े हो जाओगे तब तुम्हारी क्या दशा हो जायेगी, यह भी तो सोचो। अंग ढीले पड़ जायेंगे, बुद्धि मंद हो जायेगी, शरीर साथ नहीं देगा तब भला सत्संग क्या करोगे ? तब तो दुःखों का पहाड़ ढोना पड़ेगा।

किसी संत से पूछा गया कि 'दुःखों का घर बताइये।' उत्तर मिलाः 'बुढ़ापा।' बताओ ऐसे बुढ़ापे में कैसे सत्संग करोगे ? परमात्म ज्ञान तो बचपन से ही मिलना चाहिए।

दुष्टों का संग करने से मन मलिन होता है। नीच मनुष्यों के संग से तो मरना श्रेष्ठ है। गुरू नानकदेव से उनकी माता ने पूछाः 'बेटा ! रात दिन मुख से क्या जपता रहता है। ?"

नानकजी ने उत्तर दियाः **"आखां जीवां विसरे मर जाय।"** अर्थात् दिन रात जब सच्चा नामस्मरण करता हूँ तभी जीवित हूँ, नहीं तो मर जाता।

यह न भूलना चाहिए कि विचार ही जीवन का निर्माता है। जिस प्रकार बीमारी का चिंतन करने से हम स्वस्थ जीवन नहीं बिता सकेंगे, उसी प्रकार मलिन विचार करने से हम आनंदमय जीवन नहीं जी सकते।

मनुष्य को सदैव हंसमुख रहना चाहिए कि 'आनंद हमारे पास उपस्थित है।' जो आदमी मूली खाता है, उसे मूली की ही डकार आती है। हमारे भीतर भी जैसे विचार होंगे, वैसे ही वचन और कर्म भी होंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विवेकी बनो

राग द्वेष का त्याग करो, वैराग्य धारण करो। 'वैराग्य' का अर्थ फकीरी वेश धारण करना नहीं अपितु संसार की असत् वस्तुओं में से ममता व आसक्ति का त्याग करना है। भगवान में ही राग रखो। भगवन्नाम अंधे की लाठी के समान है। मनुष्य जन्म का आदर करो, तुम इसी जीवन में मुक्त हो सकते हो।

जो कर्म जीवन्मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं, उनका त्याग कर दो। मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिए नित्य सत्संग करो। जैसे चन्दन के पेड़ के निकट जो पेड़ होते हैं वे भी चन्दन की सुगंध से सुगंधित हो जाते हैं, वैसे ही वेदवाणी तथा संतवाणी हमारा उद्धार करने वाली है।

'गुरू' अर्थात् प्रकाश देनेवाले। सौ सूर्य उदय हों तो भी हृदय के भीतर प्रकाश नहीं कर सकते। भीतर का प्रकाश तो सच्चे ब्रह्मवेत्ता सदगुरू ही दे सकते हैं। सदगुरू और सत्शास्त्र जो कहते हैं, उसमें श्रद्धा विश्वास रखो। भगवान और संतों से जीवन्मुक्ति (आत्मज्ञान) के सिवाय कुछ भी नहीं माँगो। साधक को सदैव यही निश्चय रखना चाहिए कि 'मैं शरीर नहीं हूँ। मुझे यह शरीर भगवान की कृपा से मोक्षप्राप्ति के लिए मिला है।' इस प्रकार का निश्चय करके शरीर में से सुख की भावना का त्याग कर देना चाहिए। जो प्राप्त हो उसका शुद्ध उपयोग करना चाहिए। प्राप्त वस्तु का शुद्ध उपयोग करने और जो अप्राप्त हो उसकी इच्छा को त्याग देने से राग की निवृत्ति हो जाती है। राग के न रहने से द्वेष स्वयमेव निकल जायेगा और इन दोनों के न रहने से व्यक्ति निर्वासनिक हो जायेगा।

'मैं शरीर हूँ' इस भावना के मिट जाने से देह की आसक्ति हट जायेगी। आसक्ति हटने से शरीर, शरीर के सम्बन्धों एवं कार्यों में सत्यबुद्धि नहीं रहेगी और राग वैराग्य एवं योग में बदल जायेगा।

जो संसार के आने-जाने वाले तथा दुःखों के उत्पत्ति स्थान भोगों में कभी नहीं रमता, रति नहीं करता, प्रेम नहीं करता वह मनुष्य बुद्धिमान है। व्यवहार में भी हम देखते हैं कि वह मनुष्य विवेकी नहीं होता, जो दुःख पैदा करने वाली वस्तुओं को उपयोग में लाये, ऐसी वस्तु का संग्रह करे या प्राप्त करने का प्रयत्न करे, ऐसा व्यक्ति तो मूर्ख है। परमात्मा की प्राप्ति में न धन का महत्त्व है, न पदार्थों का, न वस्तुओं का, न सम्बन्धों का, न देश का, न जाति का, न वेष का, न विद्या का और न ही पद प्रतिष्ठा का महत्त्व है। उसमें महत्त्व है अपनी 'चाह' का। व्याकुल होकर परमात्मा से प्रार्थना की जाय कि 'हे नाथ ! अविवेकी पुरूषों की विषयों में जैसी प्रीति होती है, वैसी ही प्रीति आपके प्रति आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदय में हो और वह कभी दूर न हो।' विवेकी मनुष्य वह है, जो दुःख देने वाली वस्तुओं से दूर रहकर, उन्हें हटाकर, जहाँ परम सुख है, जहाँ आत्यन्तिक आनंद है तथा जहाँ शाश्वत शांति है, उस परमात्मस्वरूप को, भगवत्प्रेम को, आत्मानंद को, आत्मसुख को, आत्मतत्त्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

मुक्ति बड़े में बड़ा सुख है और पाप बड़े में बड़ा दुःख है। प्रभु की प्रार्थना साथ मिलकर अथवा अकेले अवश्य करनी चाहिए। कमर कसकर परमात्मा को याद करो तथा औरों को याद कराओ तो तुम्हें पुण्य लाभ मिलेगा। **परमेश्वर ते भूलिये व्यापन सभी रोग।** अतः भगवान को सदैव याद रखो और प्रीतिपूर्वक उसे भजो, जो तुम्हारा अंतरात्मा होकर बैठा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मूल में ही भूल

जो लोग विषय-भोगों को मक्खन और पेड़ा समझते हैं, वे मानों चूना खाते हैं। चूना खाने वाले की क्या दशा होती है यह सभी जानते हैं। बेचारा बेमौत मारा जाता है।

हमारी चाह तो उत्तम है परंतु उसे पाने का जो प्रयत्न कर रहे है उसके मूल में ही भूल है। हम अनित्य पदार्थों को नित्य समझकर उनसे सुख लेना चाहते हैं। शरीर हमारा है इससे सुख लें, परंतु शरीर का क्या भरोसा ? इस पर गर्व किसलिये ? जब शरीर ही स्थिर नहीं है तो फिर शरीर को मिलने वाले पदार्थ, विषय, सम्बन्ध आदि कहाँ से स्थिर होंगे ? धन इकट्ठा करने और सम्मान प्राप्त करने के लिए हम क्या-क्या नहीं करते, यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि यह सब अंत में काम नहीं आयेगा। अस्थिर पदार्थों की तो बड़ी चिंता करते हैं परंतु हम वास्तव में क्या हैं, यह कभी सोचते ही नहीं। हम ड्राइवर हैं परंतु स्वयं को मोटर समझ बैठे हैं, हम मकान के स्वामी हैं परंतु अपने को मकान समझते हैं। हम अमर आत्मा है परंतु अपने को शरीर समझ बैठे हैं। बस यही भूल है, जिसने हमें सुख के लिए भटकना सिखाया है।

संसार की कोई भी वस्तु सुन्दर और आनंदरूप नहीं है। सुन्दर और आनंदरूप एक परमात्मा ही है। उसी के सौन्दर्य का थोड़ा अंश प्राप्त होने से यह संसार सुन्दर लगता है। उस आनंदस्वरूप की सत्ता से चल रहा है इसीलिए इसमें भी आनंद भासता है। अतः हमें चाहिए कि संसार के पदार्थ जिसकी सत्ता से आनंददायी व सुखरूप भासते हैं, उसी ईश्वर से अपना दिल मिलाकर भगवदानंद प्राप्त करें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ